जनवरी-मार्च २००७

कथाबिंब

कथाप्रधान त्रैमासिक पत्रिका

कहानियां

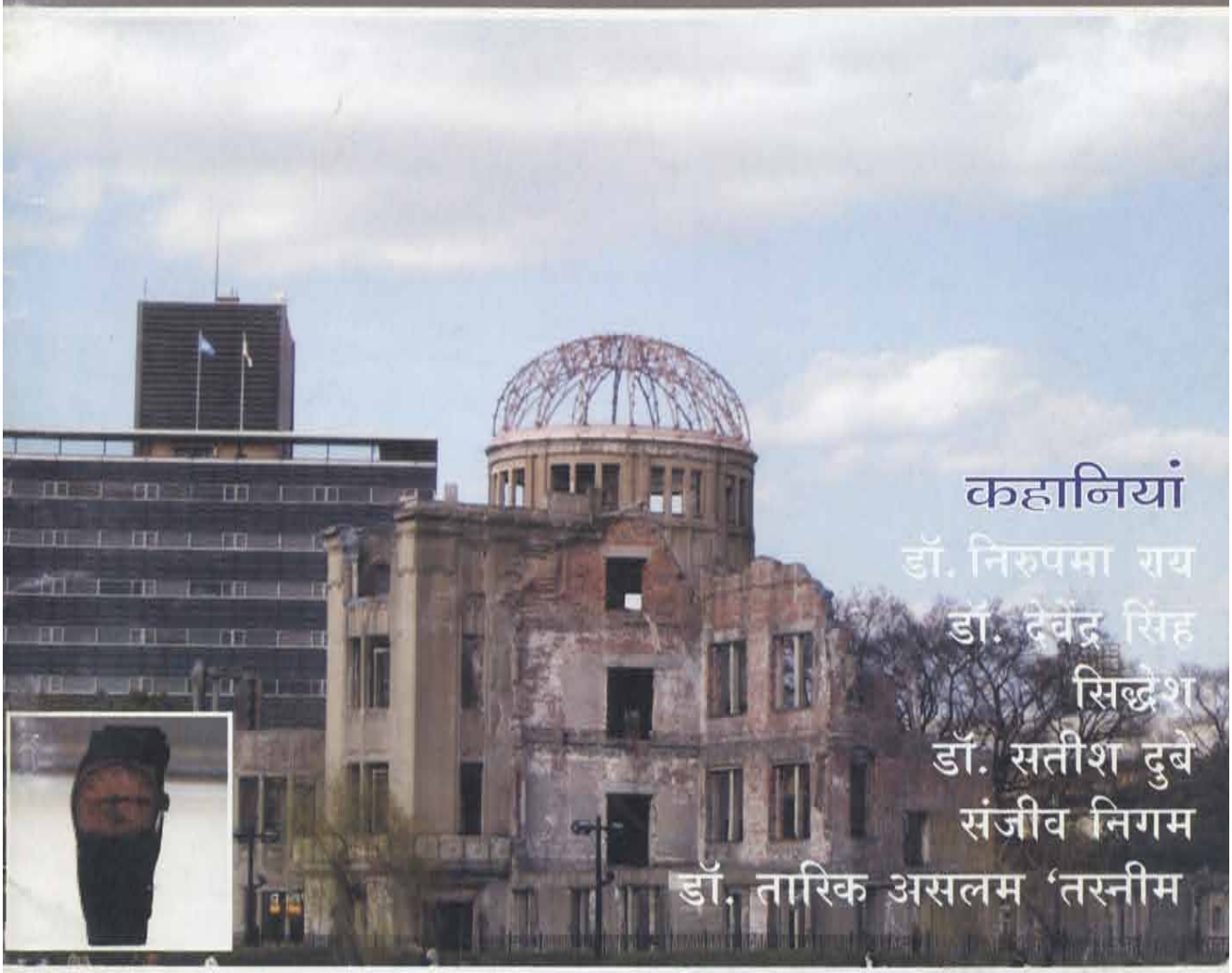

डॉ. निरुपमा राय

डॉ. देवेंद्र सिंह

सिद्धेश

डॉ. सतीश दुबे

संजीव निगम

डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम

सागर-सीपी

डॉ. [illegible]

आमने-सामने

डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'

१५ रुपये

महा ब्याज

कमाईये

ब्याज दर

९.१%

बैंक ऑफ महाराष्ट्र

महालक्ष्मी सावधि जमा योजना

-: प्रमुख विशेषताएं :-

- ३ वर्ष के लिए सावधि जमा
- सामान्य जनता के लिए - ९.१०% ब्याज
- वरिष्ठ नागरिकों के लिए - ९.६०% ब्याज
- कोई समय बंदी नहीं
- १ वर्ष व २ वर्ष के बाद जमा वापस लेने का विकल्प उपलब्ध
- मासिक, तिमाही, अर्ध वार्षिक और परिपक्वता आधार पर ब्याज भुगतान का विकल्प उपलब्ध
- ऋण / ओवरड्राफ्ट सुविधा उपलब्ध
- नामांकन सुविधा उपलब्ध

बैंक ऑफ महाराष्ट्र

(भारत सरकार का उपक्रम)

सरल महा बैंकिंग

संपूर्ण भारत टॉल फ्री नं. : १८००-२२२३४० व १८००-२२०८८८

www.bankofmaharashtra.im

शर्तें लागू

जनवरी–मार्च २००७
(१९७९ से प्रकाशित)

कथाबिंब

प्रधान संपादक
डॉ. माधव सक्सेना 'अरविंद'

संपादिका
मंजुश्री

संपादन सहयोग
प्रबोध कुमार गोविल
देवमणि पांडेय
जय प्रकाश त्रिपाठी
हम्माद अहमद ख़ान

संपादन-संचालन पूर्णतः
अवैतनिक तथा अव्यवसायिक

● सदस्यता शुल्क ●
आजीवन : ५०० रु, त्रैवार्षिक : १२५ रु
वार्षिक : ५० रु
(वार्षिक शुल्क ५ रु के डाक टिकटों के रूप में भी स्वीकार्य है)
विदेश में (समुद्री डाक से)
वार्षिक : १५ डॉलर या १२ पौंड
कृपया सदस्यता शुल्क चैक (कमीशन जोड़कर), मनीऑर्डर, डिमान्ड ड्राफ्ट, पोस्टल ऑर्डर द्वारा केवल 'कथाबिंब' के नाम ही भेजें.

● रचनाएं व शुल्क भेजने का पता ●
ए-१० 'बसेरा,'
ऑफ दिन-क्वारी रोड,
देवनार, मुंबई - ४०० ०८८
फोन : २५५१५५४१
e-mail : kathabimb@yahoo.com
(कृपया रचनाएं भेजने के लिए ई-मेल का प्रयोग न करें.)

प्रचार-प्रसार व्यवस्थापक
अरुणा सक्सेना
फोन : २३६८ ३७७५

एक प्रति का मूल्य : १५ रु
कृपया नमूने की प्रति मंगाने हेतु १५ रु के डाक टिकट भेजें.
(सामान्य अंक : ४०-४४ पृष्ठ)

क्रम

कहानियां

|| ७ || 'मां की बिटिया नयनतारा' / **डॉ. निरुपमा राय**
|| ११ || पहली थाली / **डॉ. देवेंद्र सिंह**
|| १६ || सुबह की चाय / **सिद्धेश**
|| २० || कसी हुई मुट्ठियां / **डॉ. सतीश दुबे**
|| २६ || मशाल जल उठी जब / **संजीव निगम**
|| २९ || सरहदें / **डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'**

लघुकथाएं

|| २८ || तो क्या मैं भी !: नैनसी / **विजय**
|| ४३ || भ्रष्टाचार / **राजेंद्र निशेश**
|| ४९ || दृष्टि / **सिद्धेश्वर**

कविताएं / ग़ज़लें

|| २५ || ख़ूबसूरत दुनिया के लोग / **राधेलाल बिजघावने**
|| ३३ || ग़ज़ल / **भोला पंडित 'प्रणयी'**
|| ४८ || बंटवारा / **जितेंद्र 'जौहर'**
|| ४८ || यूं भी मरते हैं हम / **अशोक सिंह**
|| ४९ || ग़ज़लें / **महेश कटारे 'सुगम'**
|| ४९ || गुज़र गये जलजले / **दयाशंकर 'सुबोध'**
|| ५० || एक कविता : शकूर मियां पर / **रमेश मनोहरा**
|| ५० || सेवा-निवृत्ति / **उल्लास मुरवर्जी**

स्तंभ

|| २ || 'कुछ कही, कुछ अनकही'
|| ४ || लेटरबॉक्स
|| ३४ || 'आमने-सामने' / **डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'**
|| ३८ || 'सागर-सीपी' / **डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव**
|| ४२ || 'वातायन' / **कैलाश बिहारी श्रीवास्तव**
|| ४४ || पुस्तक-समीक्षाएं

आवरण फोटो : *डॉ. अरविंद*
(जापान के हिरोशिमा शहर का वह स्थान जहां अमरीका ने परमाणु बम गिराया था.)

'कथाबिंब' मुंबई की 'संस्कृति संरक्षण संस्था' के सौजन्य से प्रकाशित होती है.

कुछ कही, कुछ अनकही

यह मानी हुई बात है कि लेखक भी उसी हाड़-मांस का बना होता है जिससे कोई आम आदमी. दोनों में एक जैसे रक्त का और एक-सी प्राण वायु का संचार होता है. फ़र्क़ केवल संवेदनशीलता का होता है. लेखक अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होता है. शायद ऐसा भी कहा जा सकता है कि लेखक को अधिक जागरूक, विश्वसनीय और ईमानदार होना चाहिए. लेकिन वर्तमान में, जाने-अनजाने, हमारे सबके जीवन में उपग्रह टेलीविजन का प्रभाव बहुत भीतर तक घर करता जा रहा है. फिर लेखक ही क्यों इससे अछूता रहे ! टी. वी. पर 'रियल्टी कार्यक्रमों' की आजकल भरमार हो गयी है. यदि किसी गाने वाले को, नाचने वाले को, हंसाने वाले को जिताना हो तो ज़्यादा से ज़्यादा 'एस एम एस' भेजिए - मोबाइल बनाने वाली कंपनियां मालामाल ! कोई प्रतियोगी इस तरह के जितने 'वोट' डलवा पाये वही विजयी. वैसे यह बात अलग है कि निर्णय सुनाते समय जनता के इन मतों की गणना नहीं बतायी जाती कि किस प्रतियोगी को ऐसे कितने 'वोट' मिले.

वर्ष २००६ के 'कथाबिंब पुरस्कारों' के लिए अभिमत भेजने के लिए इस बार कतिपय लेखकों ने कुछ इसी प्रकार का हथकंडा अपनाया. अपने मित्रों के नाम पर ३०-३०, ४०-४० पोस्ट कार्ड भिजवाये जिनमें प्रथम कहानी का क्रमांक उन्हीं का था. इससे यह बात तो स्पष्ट है कि 'कथाबिंब पुरस्कार' प्राप्त करना एक विशिष्ट उपलब्धि या सम्मान माना जाने लगा है. बहरहाल, ऐसे 'स्पॉन्सर्ड' अभिमत-पत्रों को निरस्त करने के बाद ही वर्ष २००६ के कथाबिंब पुरस्कारों की घोषणा इसी अंक में प्रकाशित की जा रही है.

●

अब इस अंक की कहानियों की बानगी - यह मात्र संयोग ही है कि इस अंक की सभी कहानियों में 'स्त्री' केंद्र में है. इस दशक की महिला कथाकारों में डॉ. निरुपमा राय एक उभरता हुआ नाम है. उनकी 'मां की बेटी नयनतारा' कहानी की मां के संपर्क में आने वाला हर प्राणी एक आत्मीय बंधन में संलिप्त हो जाता है. डॉ. देवेंद्र सिंह की कहानी 'पहली थाली' में भी 'मां' मौजूद है लेकिन उसकी उपस्थिति एक विवशता है. शायद आज के युग की यह एक कटु सच्चाई है ! सुबह की चाय (सिद्धेश) कहानी में भी एक महिला है जो जीवन के शेष दिनों में हर छोटी सी घटना में सुख तलाश लेती है. डॉ. सतीश दुबे की 'कसी हुई मुट्ठियां' एक ऐसी आत्मसम्मानी युवती की कहानी है जो सभी निजी निर्णय स्वयं लेना चाहती है. किसी भी प्रकार का बाहरी हस्तक्षेप उसे स्वीकार नहीं. 'मशाल जल उठी जब' (संजीव निगम) कहानी एक देवदासी की कहानी है. कन्या-भ्रूण की हत्या करना क़ानूनन अपराध है तो क्या जीती जागती कन्या को परिवार वालों द्वारा ही देवदासी बनाकर वेश्यावृत्ति के रास्ते पर ढकेल देना गुनाह नहीं है ? 'सरहदें' कहानी (डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम') के माध्यम से हिंदुस्तान के उस पार और इस पार के मुसलमानों के परिवारों और ख़ासतौर से स्त्रियों की दशा का आकलन लेखक ने बख़ूबी किया है.

●

हम अपने रहन-सहन, आचार-विचार में दिन-ब-दिन पश्चिमोन्मुख होते जा रहे हैं. शायद हमें ध्यान नहीं रहा कि सूर्य पूर्व में उगता है और अस्त पश्चिम में होता है. अस्ताचलगामी सूर्य दूसरे दिन प्रातः पूर्व में उदय होता है. अभी हाल में, शोधकार्य के सिलसिले में मुझे एक माह (मार्च २००७) के लिए जापान के ओकायामा शहर में रहने का अवसर मिला. इससे पहले मैं दो वर्ष कनाडा भी रह चुका हूं और कई बार अमरीका भी गया हूं - वहां के अनेक शहरों की यात्राएं की हैं. ट्रेन, बस, कार से अमरीका के काफ़ी बड़े भू-भाग को देखा है. इस कारण से, इस बार की जापान यात्रा के दौरान निरंतर पश्चिम और पूर्व की तुलना करते रहना स्वाभाविक था. बहुत-सी नयी बातें जानने को मिलीं. सबसे आश्चर्यजनक बात जो सामने आयी कि वहां अंग्रेजी का प्रयोग किसी भी स्तर पर नहीं किया जाता. सड़कों पर, द्रुतगति महामार्गों पर, या शॉपिंग मालों में किसी भी सामान पर सारे निर्देश जापानी में होते हैं. हां, क़ीमत ज़रूर अंग्रेजी अंकों में छपी होती है. आम नागरिकों में बहुत कम लोग मिलेंगे जिनसे आप अंग्रेजी में बात कर सकते हैं - रेस्तरां, कैफ़ेटेरिया, विश्व विद्यालय, पोस्ट ऑफ़िस, बैंक, बस, रेल्वे स्टेशन - सब जगहें सारा काम जापानी में होता है. यहां तक कि पर्यटन संबंधी प्रचार-प्रसार सामग्री भी मात्र जापानी में ही उपलब्ध है. पूछने पर मालूम पड़ा कि स्कूली पाठ्यक्रम में तीन वर्ष के लिए अंग्रेजी केवल एक विषय के रूप में पढ़ाई जाती है जिसमें मात्र लिखना व पढ़ना सिखाया जाता है, बोलना नहीं. स्नातक और स्नातकोत्तर विषयों की सभी पुस्तकें जापानी में हैं - अंग्रेजी में पुस्तकें उपलब्ध ही नहीं हैं. यहां तक कि शोधकार्य संबंधी पुस्तकें भी सभी जापानी में थीं. 'याहू.जापान' और 'गूगल.जापान' से आम जापानी अपना सारा काम चला सकता है. देखा जाये तो किसी भी भारतीय भाषा की तुलना में जापानी लिपि बहुत ही कठिन है. वर्णमाला में अक्षर अवश्य हैं किंतु कई अक्षरों के मिलने से एक 'चित्र' बनता है जिसका अपना अर्थ होता है. फिर भी कंप्यूटर के सामान्य 'की-बोर्ड' से सारा काम चल जाता है.

संपन्नता, समृद्धता और तकनीकी में जापान अमरीका से कहीं आगे है. मोटे तौर पर देखा जाये तो जापान चार बृहत द्वीपों का देश है पर छोटे-छोटे हज़ारों द्वीप इर्द-गिर्द हैं. इन छोटे द्वीपों पर या तो 'फेरी' से जाया जा सकता है या पुलों से आपस में कई

द्वीपों को जोड़ दिया गया है. एक जगह तो नौ द्वीपों को जोड़ने के लिए क्रम से नौ पुलों की एक श्रृंखला का निर्माण किया गया है. ऊपर वाहनों का यातायात मार्ग और उसके नीचे के स्तर पर रेलमार्ग. बुलेट ट्रेनों की गति ३०० किमी. प्रति घंटा है. आये दिन कहीं भूकंप के झटके आते रहते हैं तो कहीं ज्वालामुखी लावा उगलता है. विपरीत प्राकृतिक परिस्थितियों पर जापानियों ने विजय प्राप्त कर ली है.

दूसरे विश्व युद्ध में अपनी न्यूक्लीय शक्ति का परीक्षण करने के लिए अमरीका ने हिरोशिमा और नागासाकी पर परमाणु बम डाले थे. पहला परमाणु बम सन १९४५ में ६ अगस्त को सुबह ८ बज कर १५ मिनट पर गिराया जो हिरोशिमा शहर के बीचोबीच आकाश में ६०० मीटर ऊपर फटा. उच्च ताप और विस्फोट का कुप्रभाव यह हुआ कि २ किमी. व्यास में सभी बिल्डिंगें जल गयीं या ध्वस्त हो गयीं. अगले चार महीनों में, दिसंबर १९४५ तक न्यूक्लीय विकिरण के कारण क़रीब एक लाख चालीस हज़ार लोग मृत्यु की गोद में सो गये. यह मानव इतिहास की सबसे जघन्य घटना है. इस 'अपराध' के लिए आज तक किसी को कोई सज़ा नहीं मिली. बल्कि उसके बाद और भी बहुत से देश न्यूक्लीय दौड़ में शामिल हो गये और आज स्थिति यह है कि पूरी दुनिया में लगभग २०,००० न्यूक्लीय युद्धास्त्र एकत्रित हो गये हैं जिसमें अधिकांश अमरीका के पास हैं.

पिछले ५०-५५ सालों में जापानियों ने दृढ़ संकल्प के साथ जिस तरह अपने देश का पुनर्निर्माण किया है वह देखते ही बनता है. लगभग उसी समय भारत आज़ाद हुआ था. लेकिन हमारे यहां बहुत-सी जटिल समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयास नहीं किया गया. यह सोचकर कि कहीं कोई एक तबका या वर्ग विशेष नाराज़ न हो जाये, हल खोजना भविष्य पर टाल दिया गया - चाहे परिवार नियोजन की बात हो, आरक्षण की समस्या हो या भाषा का प्रश्न हो. यह सर्वमान्य है कि राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी देश गूंगा होता है. भारत और चीन को अगर मिलाकर लें तो विश्व के ४०-४५ प्रतिशत लोग यहां बसते हैं. इसके अलावा भी विश्व भर में अन्य देशों में रहने वाले भारतीयों की संख्या भी करोड़ों में है. जापान की तरह ही चीन में भाषा की कोई समस्या नहीं है. आम बोलचाल में वहां मुख्यतः दो भाषाओं का प्रयोग किया जाता है किंतु सारे देश में एक ही भाषा से कंप्यूटर पर सारा कार्य होता है. समय आ गया है कि सूचना और प्रद्यौगिकी के आज के युग में भाषा को लेकर हमें एक स्वस्थ नीति अपनानी चाहिए. कंप्यूटर के सर्वसामान्य उपयोग के लिए अंग्रेजी का ज्ञान न होना आड़े नहीं आना चाहिए. सर्वप्रथम कंप्यूटर संबंधी सभी उपयोगों में, यथा इंटरनेट, ई-मेल आदि में हिंदी का इस्तेमाल संभव होना चाहिए. इसके साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं - जैसे तमिल, मलयालम, कन्नड़, तेलुगू, बंगाली, पंजाबी, मराठी, गुजराती आदि में भी सभी सुविधाएं उपलब्ध होनी चाहिए. इस प्रकार सभी भाषाएं विकसित होंगी और इस भाषा-सशक्तिकरण से सभी देशवासी विकास व अन्य कार्यों में सहभागी हो सकेंगे. हर भाषा में कंप्यूटर के माध्यम से निरंतर अधुनातन जानकारी उपलब्ध कराने हेतु लाखों लोगों को रोज़गार के अवसर प्राप्त होंगे. इसी संदर्भ में, 'संस्कृति संरक्षण संस्था' सितंबर २००७ में 'कंप्यूटर के विविध उपयोग और हिंदी' विषय पर एक-द्विवसीय परिगोष्ठी आयोजित करना चाहती है. पाठकों से निवेदन है कि वे हमें अपने विचारों से अवगत करायें और परिगोष्ठी में भाग लेना चाहें तो कृपया संपर्क करें. परिगोष्ठी में जो सुझाव प्रस्तावित होंगे उन्हें कार्यान्वयन हेतु सरकार को भेजा जायेगा.

●

छपते-छपते, समाचार है कि उत्तर प्रदेश विधान सभा चुनावों में बहन मायावती की बहुजन समाज पार्टी को बहुमत प्राप्त हो गया है. देश और उत्तर प्रदेश के लिए यह एक बहुत अच्छी ख़बर है, क्योंकि इतने वर्षों से चली आ रही सरकार की अस्थिरता फिलहाल ख़तम हो गयी. चुनाव आयोग बिना दंगा-फ़साद, मार-पीट, ख़ून-ख़राबे के चुनाव कराने में सफल रहा. लेकिन इसके लिए इतने लंबे समय तक चलने वाला, सात चरणों में चुनाव कराना क्या आवश्यक था ? यह भी अपने आप में एक कीर्तिमान है !

उ. प्र. के मतदाताओं ने 'एक्जिट पोल' की पोल खोल कर रख दी. एक माह से अधिक चले चुनाव के परिणामों की भविष्यवाणी करने वाले 'चुनाव पंडित' मोटी कमाई करने के बाद अगले चुनाव तक अपने-अपने दड़बों में जा छुपे हैं. अभी हाल में फ्रांस में हुए चुनावों के दौरान वहां के चुनाव-आयोग और उच्चतम न्यायालय ने 'एक्जिट पोल्स' पर प्रतिबंध लगा दिया था. सुश्री मायावती को जिताने में प्रत्येक चरण के बाद टी. वी. चैनलों के रुझानों और भविष्यवाणियों की सबसे अहम भूमिका रही है. हर चरण के बाद त्रिशंकु सरकार की आशंका की घोषणा मतदाताओं को कतई गवांरा नहीं हुई. यही कारण था कि लोगों ने बढ़ चढ़ कर, अगले चरणों में अपना दांव जीतने वाले 'हाथी' पर लगाया अन्यथा एक बार फिर अगले पांच सालों तक सरकार 'घोड़ों' की ख़रीद-फ़रोख़्त पर और आया राम, गया राम पर निर्भर रहती. इससे अंततः नुकसान तो उत्तर प्रदेश की जनता - जिसमें अगड़े-पिछड़े, हिंदू-मुसलमान - सभी वर्ग आते हैं, का होता. अब देखना यह है कि प्राप्त जनादेश से बहनजी प्रदेश को कितना ख़ुशहाल बना पाती हैं - विकास के पथ पर प्रदेश को कितना आगे ले जा पाती हैं.

अरविंद

लेटर बॉक्स

"कथाबिंब" अक्तू-दिसं. ०६ अंक मिला. पत्रिका की प्रतीक्षा हमेशा रहती है, सबब पूरा पढ़ने की उत्सुकता भी स्वाभाविक है. संयोग भी बना कि पूरा अंक पढ़ गया और प्रतिक्रिया हेतु मानसिकता भी बन गयी. इधर काफ़ी समय से लिखने के प्रति पहले सा उत्साह, या यह कह लीजिए अंत:प्रेरणा का अभाव सा महसूस हो रहा था. हो सकता है यहां से अब अवरोध ख़त्म हो.

मूलत: कहानी विधा पर आधारित 'कथाबिंब' सदैव अपना धर्म निर्वाह करने में तत्पर रही है. यह अंक भी उसी तैयारी के साथ है. डॉ. अरविंद जी की कहानी में शिल्प न होने पर भी संदेश पक्ष मज़बूत है. घटना-रपट शैली में लिखी गयी कहानी, 'मेरा भारत महान' सकारात्मक सोच का वातावरण बनाने में सफल है. व्यंग्य प्रधान और नकारात्मक नारों से चौंकाने की कोशिश करती कहानियों के बीच, यह प्रयोग अच्छा लगा.

'मुक्तिगाथा' में एक घटना (संभवत: सत्य घटना) को कथा का आवरण दिया गया है. फिर भी अपने शहर गोंदिया के आसपास के स्थानों का वर्णन व विवरण, जैसे - गोंदिया, बालाघाट, नागपुर तथा जबलपुर का संदर्भ व उल्लेख, इस कहानी से जोड़ देता है. विशेषत: 'बेनी' ग्राम को केंद्र बना कर लिखी गयी कहानी ध्यान खींचती है. यह सब व्यक्तिगत है. हर पाठक को यही अनुभव हो ज़रूरी नहीं है. कुमार शर्मा 'अनिल' द्वारा लिखित कहानी, 'रेत पर लिखा सच' युवा मन को आकर्षित करने वाली प्रेम कथा की फंतासी अधिक है. पी. एन. जायसवाल ने 'नीम पर भूत' में वर्तमान की व्यवस्था और प्रशासन की अकर्मण्यता पर प्रश्न उठाया है. 'उऋण' डॉ. श्याम सखा 'श्याम' की कहानी इस अंक की उपलब्धि है. अपने कथा तत्त्व के साथ-साथ, इसका शिल्प भी कहानी की मांग को पूरा करता है.

'आमने-सामने' में नूर मुहम्मद 'नूर' का जीवन वृत सीधी-सरल भाषा में लिखा गया बयान है. इससे उन्हें और अधिक जानने का अवसर मिला. डॉ. शिव कुमार मिश्र जी को पढ़कर निसंदेह पाठक को एक नयी दिशा मिलेगी. कम्युनिस्ट आंदोलन और वामपंथी विचारधारा से जुड़े साहित्यकारों की भारतीय दर्शन की पृष्ठभूमि की जानकारी में वृद्धि हुई. 'मुहल्ले का सुकरात' लघुकथा प्रभावित करती है. अशोक सिंह और आनंद बिल्थरे की कविताएं भी अच्छी हैं.

कमलेश्वर जी का जाना इस समय की साहित्य जगत की सबसे बड़ी घटना है. उनके बारे में कुछ कहना तो दूर, हम तो अभी उनका शोक भी ठीक से मनाने में पूरी तरह परिपक्व नहीं हो पाये. साहित्य के शलाका पुरुष को मेरी विनम्र श्रद्धांजली !

✣ सलीम अख़्तर

वहीद मंजिल, अंसारी वार्ड,
गोंदिया (महाराष्ट्र)-४४१६०१

वर्ष २००६ का अंतिम अंक मिला, आभार संपादिका मंजुश्री जी द्वारा लिया गया छाया-चित्र चित्ताकर्षक है. पहाड़ पर लिखा 'मेरा भारत महान' राष्ट्रीय भावना उद्वेलित कर उस पृष्ठभूमि को नमन करने की प्रेरणा देता है, बधाई है.

अर्से बाद प्रधान संपादक ने इस अंक में अपनी कहानी सम्मिलित करने के बावत सफ़ाई में जो बयान दिया है, यह उनकी निश्छलता है. यदि उनकी कहानी इस अंक में नहीं छपती तो क्या हम एक उत्कृष्ट कहानी-पाठ से वंचित नहीं रह जाते ? यद्यपि इस अंक की चयनित सभी लंबी कहानियां मार्मिक और पठनीय हैं, किंतु कथा-शिल्प की दृष्टि से 'मेरा भारत महान' अग्रगण्य है. अपनी षष्टीपूर्ति के पश्चात् पत्रिका की नीति को थोड़ा ढीला करते हुए प्रधान संपादक यदि अपने मूल्यवान साहित्यिक अनुभवों को इसी तरह परोसते रहेंगे, तो हमें ख़ुशी ही होगी, इस अंक का काव्यपक्ष भी सराहनीय है. भाई 'नूर' से 'आमने-सामने' होकर उनकी हौसला आफजाई कर रहा हूं कि वह इस पसरी हुई तीरगी में अपना नूर बिखेरते रहें, हम भी उनके साथ हैं. 'सागर-सीपी' के अंतर्गत डॉ. शिव कुमार मिश्र जी की बातचीत से उनके बारे में कुछ विशेष जानने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. पुस्तक-समीक्षांतर्गत राजेंद्र वर्मा का ग़ज़ल संग्रह 'लौ' पढ़ने की जिज्ञासा प्रबल हुई. संग्रहणीय अंक प्रकाशन के लिए संपादक को मेरी हार्दिक बधाई !

✣ भोला पंडित 'प्रणयी'

प्र. संपादक 'संवदिया', जय प्रकाश नगर,
वार्ड नं. ०७, अररिया (बिहार) - ८५४३११

"कथाबिंब" अक्तूबर-दिसंबर २००६ की पांचों कहानियां पठनीय और मार्मिक हैं. त्रासद यथार्थ के बीच मानवीय गरिमा का आकाश लिये आदर्श और आशावाद जगाती हुई. एक संपादक के नाते आपने अपनी कहानी बेहद संकोच के साथ दी है. लेकिन कहानी अच्छी है और जब कहानी अच्छी हो, तो संपादक की हो या किसी और की यह विचारणीय नहीं रह जाता. विचारणीय सिर्फ़ रचना होती है.

राजेंद्र चंद्रकांत राय की कहानी 'मुक्तिगाथा' स्त्री के जीवन संघर्ष और नियति की दारुण दास्तान है. कहानी की शुरुआत 'मैं' शैली में है. बाद में सारी कहानी फ्लैश बैक में जाती है जिसमें मैं कहीं नहीं आता. फ्लैश बैक का सारा वृत्तांत कथा-नायिका के बारे में है जिसे 'मैं' ने नहीं देखा है. इस तरह यह सुनी हुई दास्तान है लेकिन वर्णन हू-ब-हू देखे का-सा है. अत: 'मैं' के स्थान पर 'वह' की शैली समीचीन होती. इसी तरह डॉ. श्याम सखा 'श्याम' की कहानी में विभाजन के पंद्रह वर्षों बाद १९७१ के भारत-पाक युद्ध की बात लिखी गयी है जो तथ्यत: १९६२ का भारत-पाक युद्ध होना चाहिए.

आमने-सामने में नूर मुहम्मद 'नूर' का आत्मकथ्य और ग़ज़लें पसंद आयीं. वे ग़ज़लों के एक प्रमुख हस्ताक्षर हैं भी.

✣ केशव शरण

एस-२/५६४, सिकरौल, वाराणसी-२२१००२

"कथाबिंब" का नया अंक (अक्तूबर-दिसंबर २००६) मिला. सर्वप्रथम आपकी कहानी एक अरसे बाद पढ़ने को मिली. 'सारिका' में आपकी कहानियां पढ़ता रहा हूं. 'मेरा भारत महान' एक सार्थक और सकारात्मक कहानी है. सच है कि अब इस देश में 'सौ में नब्बे नहीं, निन्यांबे बेईमान' रह गये हैं. शायद एक प्रतिशत की वजह से ही यह 'भारत महान' की कोटि में आता है. आश्चर्य भी होता है, जिन सौ में से अस्सी प्रतिशत ईमानदार लोगों के रहते देश आज़ाद हुआ था, वह अब घटकर एक प्रतिशत ही रह गया है. हर क्षेत्र में चाहे साहित्य हो, या राजनीति, समाज का ऊंचा तबका हो या निम्न वर्ग का हिस्सा हो, सब जगह बेईमानी, चालाकी, चोर बनिये, धूर्त पूंजीपतियों का बोलबाला है.

हम साहित्य के लोग हैं, जिनका संपर्क बुद्धिजीवी, आलोचकों, संपादकों से ज़्यादा है, फिर भी रोज़मर्रे में ऐसे लोगों से भी साबका पड़ता है, जिनसे हर मोड़ पर ठोकर खानी पड़ती है. हम संवेदनशून्य और स्वार्थी होते जा रहे हैं. साहित्य में भी 'नारी-विमर्श' और 'दलित-विमर्श' के नाम पर जो नंगा नाच चल रहा है उससे हम विस्मित हैं. आज देश को 'माल्कम' जैसों की ज़रूरत है. ऐसे ही एक-दो को ढूंढ़ निकालना हमारा कर्तव्य है. बेईमानों और चोर-उचक्कों, दलाल और अपराधियों पर लिख-लिखकर हमने इनकी एक लंबी फौज खड़ी कर दी है - चमत्कार और जादुई यथार्थ के नाम पर जासूसी का मोलम्मा चढ़ाने वाले दो कौड़ी के साहित्यकार अब पुरस्कार, सम्मान के हक़दार बने बैठे हैं. अब यह तिलस्म टूटना चाहिए. यह आप सरीखे संपादक-साहित्यकार द्वारा ही संभव है. ऐसी कहानियां ही दें जिससे हमारे मन पर कोई सार्थक असर हो, सकारात्मक विचार का प्रभाव मन पर पड़े.

✣ सिद्धेश

श्रीपुर, मध्यमग्राम बाजार, कोलकाता-७००१३०

यह अंक भी हमेशा की तरह पठनीय सामग्री युक्त है. 'सागर-सीपी', 'आमने-सामने' दोनों स्तंभों के बिना "कथाबिंब" की अब कल्पना ही नहीं हो पाती. ये स्तंभ सर्वप्रथम देखता हूं. इस बार भी दोनों स्तंभों में प्रसिद्ध साहित्यकार अच्छे जमे हैं.

नूर मुहम्मद 'नूर' एक अच्छे ग़ज़लकार के साथ ही एक कहानीकार भी हैं. इस स्तंभ में उन्होंने अपनी कहानी नहीं दी किंतु उनकी ग़ज़लें भी बहुत धारदार हैं.

इस अंक की उल्लेखनीय कहानी मुक्तिगाथा (राजेंद्र चंद्रकांत राय) की लगी. 'मेरा भारत महान' में भी आपने हमारे देश की कुछ अच्छाइयों पर भी नज़र डाली. 'उऋण' श्याम सखा 'श्याम' की कहानी भी अच्छी लगी. 'पहाड़' (सुरेश सेन निशांत), 'क्या तुमने कभी सोचा है ?' (अशोक सिंह), 'तुम हमारी कलम देखो' (आनंद बिल्थरे) अच्छी कविताएं हैं.

✣ शशिभूषण बड़ोनी

राजकीय सेंट मेरीज चिकित्सालय,
मसूरी (उत्तरांचल) २४८१७१

"कथाबिंब" का ताज़ा अंक मिला. आपने जो मेरी आत्मरचना प्रकाशित की है उसके लिए आपको, 'कथाबिंब' परिवार को बहुत-बहुत शुक्रिया, नवाज़िशें. सिर्फ़ इस रचना पर अभी तक मुझे दो दर्जन से ज़्यादा ख़त मिल चुके हैं जो देश के कोने कोने से आये हैं. कइयों में तो कई अद्‌भुत प्रश्न भी हैं. जिनके जवाब मुझे भी नहीं मालूम... मैं अब सोचता हूं कि मैंने ऐसा क्या लिख दिया...गोबर ने अपनी कहानी लिखी बस... बहरहाल, पाठकों के पत्रों से बहुत बल मिला है, ख़ुशी मिली है और उत्साहवर्धन भी हुआ है... पहली बार इसी अंक में आपकी कहानी भी पढ़ी. कहानी के लिए आपको बहुत-बहुत बधाई. ढेरों बातें हैं जो इस समय में ज़ेहनी उथलपुथल में गड़मड़ हो रही है. क्या लिखूं...क्या नहीं लिखूं...

✣ नूर मुहम्मद 'नूर'

सी. सी. एम. क्लेम्स ला, दक्षिण पूर्व रेलवे ३,
कोयला घाट स्ट्रीट, कोलकाता-७००००१

"कथाबिंब" अक्तू-दिसं. २००६ का अवलोकन किया. हिंदी साहित्य की विविध विधाओं के अंतर्गत उच्च स्तरीय सामग्री को समेटे हुई ऐसी पत्रिकाएं अब कम रह गयी हैं, 'मेरा भारत महान', 'उऋण', 'मुहल्ले का सुकरात', 'सहमति' - रचनाओं ने विशेष रूप से प्रभावित किया. पद्यभाग में प्रकाशित नूर साहब की ग़ज़लें, अशोक सिंह और डॉ. तिवारी की कविताएं आकृष्ट कर गयीं. सागर-सीपी और संक्षिप्त समीक्षाओं के स्तंभ पाठकों को बराबर अपनी ओर खींचते हैं. पत्रिका निरंतर विकास करे, यही कामना है.

✣ डॉ. दरवेश भारती

डी-३८, निहाल विहार, नयी दिल्ली-११००४१

'मेरा भारत महान' कहानी जीवन से सीधे बात करती हुई लगी. महानगरों में जीवन की हलचलों की आदतों से रू-ब-रू यह कहानी अच्छी लगी. डॉ. श्याम सखा 'श्याम' की कहानी पढ़ी तो लगा पढ़ नहीं, सुन रहा हूं. 'उऋण' वास्तव में कहानियों की भीड़ में अलग-सी कहानी लगी. डॉ. शिवकुमार मिश्र से डॉ. सूर्यदीन यादव की बातचीत अच्छी है. मार्क्सवाद के माध्यम से जीवन को खूब टटोला है, मज़ा आया पढ़कर. विश्वास है कि आगे भी ऐसी ही पठनीय सामग्री मिलती रहेगी.

✣ आनंद शर्मा

हकीम कन्हैयालाल मार्ग, २०१, विहारीपुर, बरेली-२४३००३

'कथाबिंब' का अक्तूबर-दिसंबर अंक मिला. हिंदी जगत की एक अनिवार्य पत्रिका के रूप में प्रतिष्ठित पत्रिका के इस अंक में डॉ. अरविंद तथा श्याम सखा 'श्याम' की कहानियां, नूर मोहम्मद 'नूर' की ग़ज़लें तथा वरुण कुमार तिवारी और राधेलाल बिजघावने की कविताएं अच्छी लगीं. पंजाबी भाषा के कथोपकथन हिंदी कहानी में नगीने जैसे लग रहे हैं. श्याम सखा 'श्याम' को बधाई. 'कथाबिंब कहानी पुरस्कार' (अभिमत पत्र) सर्वथा अनूठा नया और रुचिकर लगा.

✣ डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी

अंचल भारती प्रेस, गोरखपुर मार्ग, देवरिया २७४००१

"कथाबिंब" का अक्तू.-दिसं. २००६ अंक ! मैं आंख मूंदकर अपनी प्रतिक्रिया प्रेषित नहीं कर रहा हूं. वास्तव में यह अंक पढ़कर स्पष्ट होता है कि इस अंक की समग्र सामग्री स्तरीय व उच्चकोटि की है. 'कुछ कही, कुछ अनकही', 'सत्यम, शिवम्, सुंदरम्' है. हरीभरी घनी अमराइयों से परिपूर्ण सभ्यतायुक्त भारत वर्ष की महिमा व 'कथाबिंब' के संपादक की स्पष्टवादिता इसमें समाहित है. वरिष्ठ साहित्यकार श्री कमलेश्वर जी शरीर से हमारे सामने नहीं हैं, परंतु उनका नाम हिंदी कहानीकारों में सदैव सम्मान से लिया जायेगा. डॉ. अरविंद जी जो फतेहगढ़ उत्तर प्रदेश के रहने वाले हैं तथा वर्तमान में मुबई में रह रहे हैं, ऐसा उनकी प्रकाशित कहानी 'मेरा भारत महान' से पूर्णरूप से जानकारी में आया. पढ़कर हृदय अति प्रसन्न हुआ क्योंकि फतेहगढ़ छावनी संसार भर में प्रसिद्ध है तथा जिला फ़र्रुख़ाबाद उत्तर प्रदेश में है जहां गंगा मां बहती हैं व दूसरा काशी है. इसलिए डॉ. अरविंद जी सच्चे भारतवासी हैं. सकल 'कथाबिंब' परिवार को बधाई. इसी के साथ 'कथाबिंब' के समस्त पाठकों, कहानीकारों, साहित्यकारों, कवियों, ग़ज़लकारों सभी को बधाइयां. पाठकों द्वारा 'लेटर-बॉक्स' कॉलम में प्रतिक्रियाएं स्पष्ट पढ़ने को मिलती हैं. 'कथाबिंब कहानी पुरस्कार' वास्तव में लोकतांत्रिक योजना है क्योंकि इसमें अलौकिक पाठकगण अपना अपना मत सहयोगी के रूप में व्यक्त करते हैं.

✣ जे. पी. टंडन 'अलौकिक'

२/१४७, खतराना जिला, फ़र्रुख़ाबाद (उ. प्र.) २०९ ६२५

पिछले अंक में स्वरुचि के अनुसार काव्य-रचनाएं खोजकर पहले पढ़ीं. कविता को परिभाषित करती राधेलाल बिजघावने की 'कविता' रुचिकर लगी. इस बार 'आमने-सामने' स्तंभ नूर मुहम्मद के सुदीर्घ जीवन-संघर्ष का जीवंत दस्तावेज-सा लगा, जिसमें मार्मिकता भरी पड़ी है. उनकी ग़ज़लें बहर (छंद) की प्रवहमानता के कारण विशिष्ट हैं ही, साथ ही अनुभूतिपरक कथ्य के चलते भी ख़ास हो गयी हैं. हां, उनकी द्वितीय ग़ज़ल का मतला शायद मुद्रण-दोष का शिकार हो गया है. नूर मुहम्मद व आनंद बिल्थरे ने 'क़लम' शब्द को स्त्रीलिंग मानकर प्रयोग किया है. मेरी जानकारी में 'क़लम' पुल्लिंग है, 'लेखनी' स्त्रीलिंग ... ख़ैर.

कहानी अभी तक सिर्फ़ एक ही पढ़ सका हूं 'मेरा भारत महान.' माल्कम पर केवल एक वाक्य का 'यह अपने देश की प्रतिष्ठा का प्रश्न है' का जादुई असर हुआ कि टिकट कन्फ़र्म हो गया. वह 'धन्यवाद' का सच्चा हक़दार है.

✣ जितेंद्र 'जौहर'

एन-३३/६, रेणुसागर, सोनभद्र (उ. प्र.) - २३१२१८

'कथाबिंब' का अक्तू.-दिसं. ०६ अंक प्राप्त हुआ आपका संबंध जिला फ़र्रुख़ाबाद से है यह जानकर बेइन्तिहा ख़ुशी हुई. आपसे और अधिक अपनापन महसूस होने लगा. पत्रिका ने तो प्रभावित किया ही था. आपके व्यक्तित्व के बारे में जानकर अच्छा लगा.

✣ आलेहसन खां, एडवोकेट

ग्राम पितौरा, कायमगंज, जिला फ़र्रुख़ाबाद (उ. प्र.)-२०७५०२

"कथाबिंब" का अक्तू-दिसं. ०६ अंक मिला. मैं निजी ज़िंदगी की उलझनों और अस्त-व्यस्तता के चलते न प्राप्त सूचना दे पाता हूं, न रचनाएं भेज पाता हूं. बहुत चाहने के बावजूद न पत्रिका का किसी प्रकार आर्थिक संबल बन सकता हूं. आप एक वैज्ञानिक होने के साथ-साथ सफलतापूर्वक साहित्य सृजन और नियमित रूप से पत्रिका का कुशल संपादन संचालन कर रहे हैं, यह नमन योग्य है, वरेण्य है, प्रेरणास्पद है. अभी नूर मुहम्मद 'नूर' की सशक्त आत्मरचना पढ़ी है जो प्रभावशाली है और रचनाकार के जीवन संघर्षों को पूरी शिद्दत में रेखांकित करती है.

✣ कृष्ण सुकुमार

१९३/७, सोलानी कुंज, भा. प्रौ. संस्थान,
रुड़की-२४७ ६६७

अक्तूबर-दिसंबर अंक में पहली बार आपके कथा शिल्प से साक्षात्कार हुआ, एक कनिष्ठ संपादक का वरिष्ठ संपादक के प्रति सम्मानित दृष्टिकोण न समझें तो हृदय से आपके कथा कौतुक की प्रशंसा करना चाहता हूं. इसलिए नहीं कि कहानी शिल्प और कथ्य की दृष्टि से श्रेष्ठ है, बल्कि इसलिए कि कथानक एक सच्चे भारतीय की 'स्व' भावना को एवं राष्ट्र स्वाभिमान को उत्कृष्ट ढंग से उकेरता है. मेरा मानना है कि उथले अनुभवों को और कल्पनातीत दृष्टांतों को समृद्ध लेखनी से, प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करना कला हो सकता है, लेकिन भोगे हुए यथार्थ को प्रस्तुत करना ही सच्चा साहित्य है, जो आपकी कहानी का मूल है. बधाई स्वीकारें !

आपका परिचय तनिक विस्तार से जाना, बहुत अच्छा लगा, बहुत पहले एक पत्र में मैंने मंजुश्री जी से विस्मृत परिचय की बात लिखी थी आपको. दरअसल, मेरे अग्रज मित्र स्व. राजेंद्र पाल सिंह कश्यप (टाइम्स ऑफ इंडिया) ने करीब २२-२३ वर्ष पूर्व, मेरे पास "कथाबिंब" का लघुकथा अंक देखकर मंजुश्री से अपनी भेंट का वृतांत सुनाया था और तभी से मुझे यह अहसास है कि आप से मेरा परोक्ष परिचय है, जो इस अंक में छपे परिचय के बाद कुछ-कुछ प्रत्यक्षता की ओर उन्मुख हुआ है.

✣ मनोज अबोध

सरस्वती मार्ग, बिजनौर (उ. प्र.) - २४६७०१

'कथाबिंब' अंक अक्तू.-दिसं. ०६ पढ़कर अत्यंत प्रसन्नता हुई. आप हिंदी क्षेत्र से दूर रहते हुए भी हिंदी साहित्य की सेवा कर रहे हैं. अंक वास्तव में पठनीय व संग्रहणीय है, जिसमें उच्च स्तरीय साहित्यिक रचनाएं विद्यमान हैं. मैं आपकी साहित्यिक जिजीविषा का कायल हूं. इसमें संपादिका श्रीमती मंजुश्री का सहयोग सराहनीय है तथा आपका मार्गदर्शन सुदर्शन. आप मुंबई जैसे हलके से हिंदी का स्वर बुलंद कर रहे हैं. यह कम गौरव की बात नहीं. आपको साधुवाद तथा हार्दिक बधाई.

✣ अरुण कुमार भट्ट

भारी पानी संयंत्र कॉलोनी, ब्लाक ४४, क्वार्टर-२६२,
रावतभाटा, चितौड़गढ़ (राज.) ३२३३०७

कहानी

'मां की बिटिया नयनतारा'

आज मां की बरसी है. बार-बार मेरी आंखें भीग उठती हैं. आज के दिन ही तो मेरी प्यारी मां हम सब को छोड़कर उस दुनिया में चली गयी थीं, जहां से कोई लौटकर नहीं आता. और ठीक तीन दिन बाद मां के पीछे-पीछे 'वो' भी इस नश्वर संसार को त्याग गयी थी.

आज भी मुझे वो दिन याद है, जब अन्न-जल त्यागे उसे पूरे तीन दिन हो गये थे. छोटा सा प्यारा मुखड़ा पाला मारी कमलिनी जैसा कुम्हला गया था. भोली हंसती आंखों में अब केवल गहन विषाद था. शोक मानो प्रतिपल आंखों से झरता प्रतीत होता था. चने का सत्तू और दही-चूड़ा जो उसका सर्वप्रिय भोजन था... क्या मजाल जो उसकी दृष्टि क्षणभर को भी सामने रखी उन चीज़ों पर पड़ जाय. उसने हर उस वस्तु से मुंह मोड़ लिया था, जो जीवन के लिए नितांत आवश्यक होती हैं. सभी मनुहार कर के थक गये थे... वो बस टुकुर-टुकुर शून्य में निहारती चुपचाप बैठी रहती. "खा ले नयनतारा... मां अब लौटकर नहीं आयेगी." कहते-कहते मैं कई बार रोयी थी. पर वो मिट्टी के खिलौने की तरह जड़वत रही थी. उसकी सारी चंचलता पर सहसा विराम लग गया था. कहते हैं जब इन्सान मृत्यु के पथ पर चल देता है तो उसकी मुट्ठियां ख़ाली ही रहती हैं... पर स्पष्ट प्रतीत हो रहा था जैसे मां उसकी सारी प्रसन्नता...चपलता...क्षुधा...तृषा...सब कुछ अपनी मुट्ठी में बंदकर अनंत में विलीन हो गयी हों. मेरी भी वही दशा थी... मात्र सोलह वर्ष की उम्र में पग धरती... मेरा भी सर्वस्व मां के साथ ही चला गया था. इसी अवस्था में तो बेटी को मां के साथ की सबसे ज़्यादा आवश्यकता होती है.

"गुड्डो ! तू तो मेरी प्राण है...तेरे बिना तो मैं पल भर नहीं रह सकती," कहने वाली मां मुझे बहुत बड़ा दंड दे गयी थीं. मां क्या गयी घर का संपूर्ण श्रृंगार ही चला गया. बाबूजी की सूनी आंखों में कौंधता दर्द, दोनों बड़े भाई-भाभियों और बड़ी बहन-बहनोई की विकल वेदना और मेरी आंतरिक पीड़ा का पारावार न था. पर 'उसकी' दयनीय दशा देखकर हम सब को अपनी पीड़ा कम लग रही थी.

अच्छी-भली स्वस्थ मां इस तरह अचानक सारे बंधन तोड़कर चली जायेंगी किसी ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था. पूरा परिवार, समाज आहत था. मां थीं ही इतनी व्यवहारकुशल और ममतामयी कि सबके हृदय में अपनी अमिट छाप छोड़ देती थीं. जो भी एक बार मां के संपर्क में आता, बस उसी क्षण से उनका ही होकर रह जाता. लोग मां के सुख-सौभाग्य पर आश्चर्य...ईर्ष्या स्नेह... सभी भावनाएं व्यक्त करते. आज्ञाकारी संतानें... उम्र के अंतिम पड़ाव में भी मान-सम्मान और प्रेम देने वाले पति...नाती...नातिन, पोते-पोतियों से भरा घर. सभी मां के नेहबंध में बंधे थे. और 'वो' भी जिसे मां बहुत प्यार करती थीं... मात्र पांच साल ही तो हुए थे उसे हमारे घर में आये. मां का उसके साथ न तो रक्त संबंध था, न ही दूर-पास का कोई रिश्ता... हो भी कैसे सकता था ? पर जब हृदय में किसी के प्रति सद्भाव का उदय हो जाता है, तो स्नेहिल भावनाएं अलौकिक प्रेम का रूप धर मुखर हो उठती हैं. यह निर्विवाद सत्य है. यह ऐसी अवस्था होती है जब सहज स्नेह के आगे सब कुछ गौण हो जाता है. मां ने उसके साथ वही स्नेह बंधन जोड़ा था. वो भी मां के ममताच्छादित आंचल तले विचरती बेहद प्रसन्न थी. और मां की मृत्यु के बाद उसकी दशा ने तो जैसे दोनों के प्रेम पर एक अलौकिक आस्था की मुहर लगा दी थी.

डॉ. निरुपमा राय

मुझे आज तक स्मरण है वह दृश्य... जब कचहरी से लौट कर बाबूजी ने 'उसे' मां की गोद में डालते हुए कहा था "अब इसे तुम ही संभालो, मेरे एक निर्धन मुवक्किल के घर थी पहले. जब वो दाने-दाने को मुहताज हो गया, तो इसे मेरे हाथों सौंप गया. रो-रोकर कह रहा था... "वकील साहब ! इसे अपनी संतान की तरह ही पालियेगा... बीस दिन की उम्र से पाला है इसे. अभागा हूं... दो जून की रोटी जुटती नहीं, इसे क्या खिलाऊंगा ?"

मां का हृदय दया से आपूरित हो उठा था. भीगी आंखों से उस नन्हीं सी जान को स्नेहाशीष देकर मां ने गले से लगा लिया था. और नाम दिया था, नयनतारा. उस समय नयनतारा की उम्र कुछ महीनों की ही थी. अचानक पराये घर और नितांत अजनबी लोगों के बीच ख़ुद को पाकर शायद वो भयभीत हो गयी थी, कुछ खा-पी ही नहीं रही थी. पूर्ण एकाग्रता से रुई के फाहे से उसके नन्हें मुख में दूध की बूंदें डालती मां ममत्व की अलौकिक प्रतिमा लगती थीं.

"पी ले गुड्डो... बस, थोड़ा सा और. हां, ऐसे ही...वाह मेरी मुन्नी ! शाबास..." मां उसका हौसला बढ़ाती. उसके शरीर को धीरे-धीरे थपथपाती. उसे दूध पिलाती तो मैं थपथपाती. उसे दूध पिलाती तो मैं झूठा क्रोध दिखाकर कहती, "क्या कहा गुड्डो ? मां, तुम मुझे प्यार से गुड्डो कहती हो... अब इसे भी गुड्डो ही कहने लगीं ?"

मां मुस्कुरा पड़तीं, "गुड़िया...ये तुझसे भी छोटी है न?"

"तो क्या, इसे मुझसे भी ज़्यादा प्यार करोगी ?"

"सुन तो बिटिया..."

"मां, इसका नाम बदल डालो, मुझे अच्छा नहीं लगता." एक दिन मैं ने ज़िद पकड़ ली थी.

"अच्छा ! अच्छा ! इसका नाम...हां, नयनतारा कैसा रहेगा ?"

"बहुत बढ़िया", मैं मां की बात से सहमत थी. शायद 'वो' भी, तभी तो ख़ुशी से उछलने लगी थी.

समय पंख लगाये उड़ता गया... नयनतारा बड़ी होती गयी... मैं भी. मात्र दो वर्षों में ही वो बेहद चंचल हो गयी थी. नये-नये शब्द बोलने में माहिर... चीज़ें पहचानने में तेज़-चतुर और मां की बेहद लाड़ली. मां के साथ उसका गहरा नेहबंध, एक अटूट रिश्ता जुड़ता जा रहा था.

मां दिन भर उससे कुछ न कुछ बतियाते रहतीं. वो भी बोलने में निपुण होती जा रही थी. मां की कही बातें दोहराने में सिद्धहस्त.

"नयनतारा...!" मां पुकारतीं.

"नयन...ता...रा...!" वो दोहराती.

"आज क्या खायेगी ?"

"क्या खायेगी ?"

"दही चूड़ा ?"

"दोई... चूड़ा...!"

"या सत्तू ?"

"सत्तू...स...त्त...तू...सत्तू."

"पूजा कर लूं...तो तुम्हें जलपान दूंगी. ठीक है ?" मां पुचकारतीं.

"ठीक है...ठीक है." वो कहती.

प्रतिदिन सुबह नयनतारा ही सबसे पहले उठती. मां ! मां! मां...! उसकी तेज़ पुकार से आंगन का कोना-कोना भर उठता. फिर मां उठतीं. कमरे का द्वार खोलकर आंगन में आती हुई कहतीं, "हरे राम ! हरे राम !...नयनतारा, पहले भगवान का नाम ले बेटी, बोल, हरे राम !"

"हरे राम ! हरे राम !" उसकी तोतली मीठी ध्वनि जलतरंग सी बज उठती.

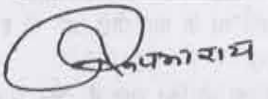

२३ मार्च १९६४, पूर्णिया,

एम. ए. (संस्कृत), पी-एच.डी. नेट, (N.E.T.)

प्रकाशन : *देश की अनेक प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कई कहानियां, आलेख, समीक्षा एवं कविताएं प्रकाशित. कहानी संग्रह - "और झरना बह निकला", शोध ग्रंथ- "विष्णु पुराण में भक्ति तत्त्व", नारी विमर्श पर एक पुस्तक और कहानी संग्रह "सुर्खियां" शीघ्र प्रकाश्य. देश के कई प्रतिष्ठित काव्य संकलनों एवं कहानी संकलनों में रचनाएं संकलित. वेद पुराण, उपनिषदादि से संबद्ध आलेखों का नियमित प्रकाशन. स्थानीय आकाशवाणी से वार्ताओं एवं कहानियों का प्रसारण. कई प्रतिष्ठित पत्रिकाओं के "नारी कलम विशेषांक" में कहानियां प्रकाशित.*

संपादन : *त्रैमासिक पत्रिका "समय सुरभि" के नारी कलम विशेषांक का अतिथि संपादन.*

पुरस्कार/सम्मान : *राष्ट्रकवि दिनकर स्मृति पूर्णियां द्वारा सम्मानित. कई कहानियों के विभिन्न पुरस्कार. वर्ष २००१, २००२, २००३, २००४ एवं २००६ में दिल्ली प्रेस प्रकाशन समूह द्वारा आयोजित अखिल भारतीय कहानी प्रतियोगिता मे कहानियां पुरस्कृत. कहानी "हमक़दम" के लिए उत्तर प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल आचार्य विष्णुकांत शास्त्री के हाथों वर्ष २००३ में पुरस्कृत. वर्ष २००५ में "स्व. राधेश्याम चितलांगिया स्मृति अखिल भारतीय हिंदी कहानी प्रतियोगिता" में कहानी "सरस्वती सदन" को द्वितीय पुरस्कार. इस कहानी का कन्नड़ अनुवाद कन्नड़ पत्र "होशदिगंत" में प्रकाशित. वर्ष २००५ का "कथाबिंब" पुरस्कार (प्रथम) कहानी- "ताले वाली डायरी" पर, वर्ष २००६ में राष्ट्रीय राजभाषा पीठ इलाहाबाद द्वारा भारती-भूषण मानद उपाधि से सम्मानित., वर्ष २००६ में अखिल भारतीय साहित्यकार अभिनंदन समिति मथुरा द्वारा कवयित्री महादेवी वर्मा सम्मान.*

संप्रति : *प्रण्यास सदस्या सह संयोजक, साहित्य विभाग- 'कलाभवन' (साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संस्था) पूर्णियां, बिहार.*

मां नहा-धोकर पूजा घर में रामचरितमानस का सस्वर पाठ करती थीं. वातावरण में एक अद्‌भुत रस प्रवाहित हो उठता था. फिर मां के मधुर कंठ से फूट पड़तीं, भजनों का रूप धरकर... रोमांचकारी स्वर लहरियां... "अब के राखि लेहू भगवान. हौं अनाथ बैठ्यो द्रुम डरिया पारधि साधे बाण. ताके भय मैं भागन चाहूं... ऊपर ढुक्यो सचान. सुमिरत ही अहि डसयो पारधि, कर छूट्यो संधान... जा लगिहों तब उरहीं सचानहि... जय-जय कृपानिधान."

"कृपानिधान... ! कृपा...नि...धा...न !"

नयनतारा भी कुछ शब्द दोहराती. मां उस पर एक स्निग्ध दृष्टि डालतीं हम सब को प्रसाद बांटकर उसे भी अपने हाथ से लड्डू के दाने खिलाती हुई कहतीं, "नयनतारा ! तू बड़ी भाग्यवान है बिटिया, जो भगवान का भजन करती है."

"हां, हां, सबसे प्यारी... भाग्यवान तो वो ही है. मैं तो कुछ भी नहीं." मैं तुनक कर कहती तो मां मुझे स्नेह से भींच लेतीं. एक दिन भावविह्वल होकर मां ने मुझसे पूछा था, "गुड्डो, जानती है ईश्वर की बनायी इस अद्‌भुत सृष्टि में सबसे मूल्यवान क्या है ?"

"क्या मां ?" मैं उत्सुक हो उठी थी.

"क्या...मां ?" नयनतारा ने भी मेरे स्वर में स्वर मिला दिया था.

"देखो मां, ये भी सुनने को आतुर है." मैं हंस पड़ी थी.

"बेटी, सहज स्नेह और आंतरिक आह्लाद संसार की सबसे मूल्यवान वस्तुएं हैं. ईश्वर के बनाये प्रत्येक प्राणी के प्रति हमारे हृदय में स्नेह होना ही चाहिए. प्रेम बांटोगी, तो प्रेम ही पाओगी... प्रत्येक परिस्थिति में प्राणी मात्र के प्रति हमारा सहज स्नेह ही हमें धैर्य, संतोष और शांति प्रदान कर सकता है."

मैं आंखों में अपार आश्चर्य, गहन श्रद्धा समेटे मां का चेहरा निहारती विचारों के गहन कांतर में प्रवेश कर गयी थी. कितने पावन विचार हैं मां के.

"अपर्णा ! तेरी मां तो लक्ष्मी और सरस्वती का साक्षात अवतार हैं." वृद्धा दादी के कहे कुछ शब्द मेरे मानस पटल पर कौंध उठे थे.

घर का कामकाज संभालने के लिए हमारे घर में एक दाई थीं. जिन्हें मां के आदेशानुसार हम सभी भाई-बहन काकी कहते थे. मां रिश्तों की मधुरता ही नहीं, उसके मर्म को भी जानती थीं. नौकर-चाकर से भी उनका आत्मीय स्नेह था जो संबोधन से झलक उठता था. पुकारने वाला प्रसन्न... और सुनने वाला अभिभूत. संबोधन का महत्व और उसका व्यापक प्रभाव मैंने प्रत्यक्ष देखा और अनुभव किया था. काकी के पति थे हरिराम काका... और उनका बेटा शिवराम... शिबू भैया. यहां तक कि खेतों पर काम करने वाला बटेदार अज़ीमुद्दीन हमारे लिए अज़ीम चाचा था.

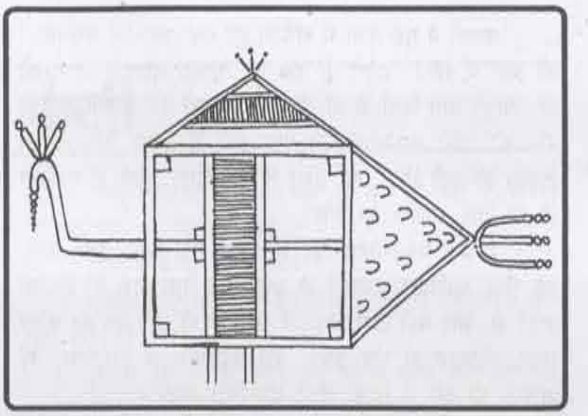

पूजा पाठ धर्म-संस्कार मानने वाली मां को जात-पात छुआ छूत से अपार घृणा थी. वो जितने प्रेम से हमें भोजन परोसतीं, उतने ही स्नेह से आंगन में बैठे अज़ीम चाचा को खाना खिलाती थीं. अज़ीम चाचा ही क्यों... चूड़िहारिन सलमा बानो... दूध वाले यादव जी दही, बेचने वाले बंगाली दादा.. या फिर तरकारी बेचने वाली रमिया जो गांव के सुदूर दक्षिण कोने में एकाकी बसी छोटी सी बस्ती से आती थी... सभी मां की मीठी वाणी का प्रसाद पाकर अभिभूत हो उठते.

"दो...ही... रोसो गुल्ला... S S S !"

बंगाली दादा प्रति सोमवार दोपहर को गली में पुकार लगाते तो मैं हाथ में कटोरा लिये बाहर दौड़ पड़ती.

"दोई...दोई... गुल्ला !" नयनतारा भी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगती.

"दादा, नयनतारा भी आपको पहचानने लगी है. दही-चूड़ा का स्वाद जो जीभ पर चढ़ गया है." मां हंस पड़तीं.

मां का अद्‌भुत वात्सल्यमंडित व्यक्तित्व सामने वाले को स्नेह और आदर के श्रद्धामिश्रित अदृश्य तंतुओं से इस तरह आबद्ध कर लेता था कि उनकी मृत्यु के बाद भी वो इन तंतुओं से मुक्त नहीं हो पाये थे.

"भौजी ! कहां चली गयीं हमें छोड़कर ?"

अज़ीम चाचा का आर्तनाद किस की आंखें नम नहीं कर गया था.

"या अल्लाह ! क्यों बुला लिया इस नेक बंदे को अपने पास, जिसकी इस जहां में बेहद ज़रूरत थी ?" वो बिलख-बिलख कर रो रहे थे. दोनों भाभियां इस तरह व्यथित थीं, मानो उनकी मां मर गयी हो. और मैं तो जल बिन मछली सी तड़प उठी थी.

"मत रो बेटी, मालकिन बड़ी पुण्यात्मा थीं. तभी तो चलती-फिरती चली गयीं. जीवन भर सब को प्रेम बांटती रहीं, प्रतिदान में किसी की सेवा नहीं ली... ऐसी मृत्यु तो भाग्यवानों को ही नसीब होती है."

काकी ने मुझे अंक में समेटते हुए कहा था. पर नयनतारा को अंक में समेटने वाली तो कब का नेहबंध तोड़कर जा चुकी थी. पिछले तीन दिनों से वो तो मानो अंगारों पर लोटती हुई भी मौन थी. वही नयनतारा जो पांच वर्षों में हमारे परिवार का सदस्य हो गयी थी... हर वस्तु में हिस्सेदार...चाहे वो पकवान हो या फिर आशीष या स्नेह.

प्रत्येक पर्व-त्योहार पर हम सब भाई-बहन एकत्र होते. बड़े भैया सपरिवार कानपुर से आते छोटे भैया पास के ही एक क़स्बे से, और बड़ी दीदी अन्नपूर्णा ससुराल से. घर का हर कोना मधुर कोलाहल से गूंज उठता. इस कोलाहल में नयनतारा की आवाज़ भी दूध में मिश्री जैसी घुल-मिल जाती.

पिछली दीपावली पर बड़ी दीदी आयी तो नयनतारा की बातें सुनकर दंग रह गयी थीं.

"मां, ये तो ख़ूब बोलने लगी है."

"अनु ! ये बड़ी होशियार है." मां ने स्नेह से उसे देखते हुए कहा था. मां जिसका भी नाम पुकारतीं, नयनतारा के होठें पर वही नाम चढ़ जाता. दिन भर सबको पुकारती रहती... अनु... ! नवीन...! प्रवीण !... जया...! सुधा...!

भाभियां खूब हंसतीं. मुझे भी वो गुड्डो ही कहकर पुकारती थी. एक शाम बड़ी मज़ेदार घटना घटी. अज़ीम चाचा बाहर बैठकर मां से हिसाब-किताब की बातें कर रहे थे. तभी भीतर से पुकार आयी,

"अज़ीम...! अज़ीम...!"

"जी मालिक, अभी आया..." कहते हुए अजीम चाचा भीतर चले आये. भीतर बैठे बाबूजी की हंसी ही नहीं रुक रही थी... "अरे ! अज़ीम तुम्हारी मालकिन की राजदुलारी ने आज मेरी आवाज़ में तुम्हें पुकारा है. मैंने नहीं बुलाया."

"क्या ? आवाज़ की ऐसी नक़ल ?" अज़ीम चाचा ने आश्चर्य से नयनतारा को देखा. फिर मां से बोले,

"भौजी, सब तुम्हारा ही प्रताप है. पत्थर पर भी हाथ धर दो, तो सोना हो जाय."

"संसार का हर प्राणी प्रेम की भाषा समझता है...मैंने क्या किया है." मां ने सहज भाव से कहा था.

मां जब भी कहीं बाहर जातीं नयनतारा को मैं ही खाना खिलाती थी. मां को न देख वो पुकार उठती, 'मां ! मां!'

"मां बाहर गयी हैं, चुपचाप खा ले. ज़्यादा हल्ला गुल्ला नहीं." मैं घुड़कती तो वो खाने लगती. इस बीच कोई भी घर में प्रवेश करता नयनतारा मां के न होने की सूचना दे देती,

"मां...नहीं...है..."

एक बार एक विवाह समारोह में गयी मां दो दिन बाद घर लौटी थीं. इन दो दिनों में नयनतारा ने सैंकड़ों बार सबको सुनाया था, "मां...नहीं...है."

वही नयनतारा तीन दिनों से मौन थी...उसने एक बार भी मां को सामने न पाकर, "मां...नहीं...है", किसी से नहीं कहा था. शायद उसे भी जीवन के स्पंदन और मृत्यु की जड़ता का अच्छी तरह भान था.

सुनहरे दिन अचानक कब...कैसे मुट्ठी से झर जाते हैं, पता ही नहीं चलता है. वो भी एक आम भोर थी. सब कुछ सामान्य गति से चल रहा था कि सहसा...मां के सीने में भीषण दर्द उठा, और प्रथम हृदयाघात में ही वो चल बसी थीं. परिवार पर वज्रपात सा हुआ था. नयनतारा भी इस आकस्मिक हलचल से बेचैन थी. मां की मृत्यु के चौथे दिन सुबह वो भी अपना नश्वर शरीर त्याग गयी थी. उस दिन पहली बार बाबूजी को फूट-फूट कर रोते देखा था. नयनतारा के मृत शरीर को हाथों में उठाकर, आर्द्रकंठ से उन्होंने कहा था, "इतनी पीड़ा...ऐसा दर्द... ऐसी स्वर्गिक भक्ति... ऐसा प्रेम किसी मानव के हृदय में हो सकता है क्या ? मुझे ही देखो, अपनी जीवनसंगिनी से इस उम्र में बिछड़ने का दर्द मेरे हृदय को दो खंडों में तोड़ सा रहा है... पर प्राण चाहकर भी नहीं निकल रहे. आजीवन तड़पता रहूंगा... और इसे देखो.. सारी तड़प समेटकर चल दी उसके पीछे..."

पूरे सम्मान से नयनतारा को आंगन में ही तुलसी चौरे के निकट धरती मां की गोद में सुला दिया गया. परिवार के एक और सदस्य की मौत ने हम सब को संज्ञाशून्य बना डाला था. मुझे मां के कहे कुछ शब्द बार-बार याद आ रहे थे. "गुड्डो, नयनतारा ज़रूर पिछले जन्म में मेरी बेटी रही होगी. इसके मुंह से निकला 'मां' शब्द मेरे रोम-रोम में आह्लाद की लहरों का सृजन कर जाता है. मैं मातृत्व के गौरव से सरोबार हो उठती हूं."

मां की बिटिया...नयनतारा... वो पहाड़ी मैना...जो पक्षी होते हुए भी मानवीय संवेदनाओं से परिपूर्ण थी... उसका पिंजरा आज भी मां की बड़ी सी तस्वीर के पास यादों की अमूल्य थाती के रूप में रखा हुआ है. जो उसकी उपस्थिति को हमारी स्मृतियों में जीवंत रखने में समर्थ है.

"गुड्डो...मां की तस्वीर पर माला चढ़ा दी ?" बाबूजी ने पूछा तो मैं वर्तमान में लौटी. मां की मुस्कुराती तस्वीर पर माला चढ़ाकर मैंने नयनतारा का पिंजरा उठाकर कलेजे से भींच लिया. विलक्षण अनुभूति हुई... जिसे मैं शब्दों में नहीं बांध सकती. प्रथम बार ऐसा अनुभव हुआ कि हृदयगत भावनाओं के प्रवाह में शब्द भले ही बह जायें... शब्दों के प्रवाह में संपूर्ण भावनाएं कदापि बह नहीं सकती. बहुत कुछ शेष रह जाता है... जो अनाकलनीय होने के कारण अनिर्वचनीय होता है.

द्वारा-श्री शंभु नाथ झा, उर्सलाइन कॉन्वेंट रोड,
रंगभूमि हाता, पूर्णिया (बिहार) - ८५४३०१.
फोन : ०६४५४-२२८७४४

पहली थाली

आज फिर हुई बेटे की अदालत में बूढ़ी मां की पेशी. और नालिश करने वाली कौन तो उसकी अपनी पतोह.

बेटा ऊपर दाढ़ी बना रहा था. दोमहला पर, वह ऑफिस जाने की जल्दी में था. बीच में ही मालकिन दमदाख़िल हो गयी. उसके चेहरे पर 'अब अति हो गयी, अब नहीं !' वाला भाव था. मगर भीतर लड्डू फूट रहे थे. वह मन ही मन संवाद करती जाती थी.

'बड़ा जो हर घड़ी देह जलाते रहते हैं कि तुम नहीं चाहती हो मां यहां रहे ! हम नहीं चाहते हैं कि आपकी मां ही है वैसी. आज अब क्या कहियेगा बोलिए ! आज तो किसी प्रमाण-सबूत की भी दरकार नहीं है. अपनी नज़र से देख लीजिए..'

'ए जी, क्या कर रहे हैं ? जरा इधर आइए तो !' कमरे में आगे-आगे उसकी बोली घुसी, पीछे-पीछे वह.

'क्या बात है ?' साहेब ने पूछा.

'आइए न इधर !' इस बार उसने साहेब का डैना धरा और खींचते हुए बाहर ले आयी.

साहेब के मुंह पर साबुन लगा था. असल में तो मालकिन डर रही थी कि कहीं नीचे का दृश्य बदल न जाय.

'वह देखिए !' उसने नीचे की ओर दिखाया.

साहेब ने देखा. नीचे रसोई घर के बरामदे पर कनिक खा रहा था.

'क्या देखें ?' साहेब की आवाज़ में उकताहट थी.

'सामने झलक रहा है, आपको नहीं लौकता है !'

'भारी मुश्किल है ! इसमें हम क्या देखें ? वह खा रहा है, कचहरी जायेगा. उसकी तारीख़ है. दस से ऊपर हो गया. हमको भी तैयार होना है. अभी दाढ़ी भी नहीं बनाये हैं. और आप पता नहीं क्या दिखाने आयी हैं.' कहते हुए वह भीतर भाग गया और मग में ब्रश डुबाकर दाढ़ी पर रगड़ने लगा.

मालकिन एक टुक ठमकी रही. मुंह गंभीर, मन मगन. फिर भीतर घुसी.

'क्या देखे ?'

'देखे कच्चू !' साहेब का हाथ रूक गया, 'अरे क्या दिखाना चाहती थीं आप सो न बताइए तो यह रहस्य क्या बनाये हुए हैं ! हम ऑफिस भी जायेंगे कि यहां आपका यही जादू का खेल देखते रहेंगे !'

'जादू का खेल है. आप बात तो बूझे ही नहीं हैं. कनिक जो खा रहा था वह क्या था ?'

'भात-दाल था और क्या ?'

'उसके लिए भात-दाल बनाने वाली उसकी माय-मौगी कौन यहां बैठी थी ?'

साहेब आ करके ओठों का कोना साफ कर रहा था. उसका मुंह उसी तरह खुला रह गया. अब जाकर उसने बात बूझी थी.

'देखिए, हम अभी तुरत खाना बनाकर निकले हैं. इधर आकर जरा-सा लेट गये कि एक भोर से खड़े ही हैं, दो मिनट देह सीधी कर लें. और थोड़ी ही देर में जो निकलते हैं तो देखते हैं कि वह बैठकर खा रहा है...' वह चुप हो गयी.

साहेब दाढ़ी के सामान धो-पोछकर धर रहा था. उसकी नज़र तो हाथों पर टिकी थी, मगर चेहरे पर की रंगत भुकभुका रही थी. मालकिन की आंखें वहीं गड़ी थीं.

'अभी किसी ने नहीं खाया है,' मालकिन ने चार्ज फ्रेम किया, 'और देखिए कि गुरू महाराज ने भोग लगा दिया. अब सब लोग प्रसाद पायें !'

❖❖ डॉ. देवेंद्र सिंह ❖❖

साहेब गुम बोलने का मुंह कहां था. चोर-मोट दोनों आगे में था.

'आप कहते हैं न हमको !' मालकिन का मुंह मुलायम हो गया था, बोली में मधु घुला था और भंगिमा में पति-पत्नी वाला भाव, 'आपको लगता है कि यह मौगी बहुत ख़राब है, कहते थे तो पतियाते नहीं थे. अब क्या कहियेगा, बोलिए ?'

साहेब नज़र नीची किये, रोषाया हुआ-सा चुप बैठ रहा.

'यह सब धुलक्कर वाला रोज़गार हमको नहीं सोहाता है !' मालकिन ने लोहा गर्म देखकर चोट दी, 'किसी को नहीं सोहाता सोहायेगा. अगे मैयो ! यह कौन सदाबरती सोभाव हुआ! हमने इतना मर-खपकर खाना बनाया. हमारा कोई जीव अब तक मुंह में कौर नहीं दिया है और ये...!'

'अच्छा हुआ न ! अब एक ही बात को कितना रट रही हैं. हम उसको समझा देंगे. उसका माथा अब भांसने लगा. बूढ़ी

बूढ़ी हुई न. बूढ़ा-बच्चा एक समान होता है.'

मालकिन कमरे से. विहंसती हुई निकली.

❐

साहेब उसी तरह मौनी बाबा बने हुए बाथरूम में घुस गये. नहाकर निकले और खाने वाली मेज पर बैठ रहे. मालकिन खाना परोसकर तैयार थी. आहट पाते ही झट थाली उठा ली.

उसने चुपचाप थाली सामने धर दी. पानी का जग और गिलास रखा. दो पल खड़ी रही. फिर नीचे उतर गयी.

'मांऽऽऽ!' अचानक ऊपर से एक हांक उछली ओर नीचे टप्पा खाकर दो कानों से टकरायी. किचन में मालकिन के कान से और उधर बरामदे पर बैठी बूढ़ी मां के कान से.

बूढ़ी को आभास हो गया. वह हांक ही थी वैसी, 'हाज़िर हो ऽ ऽ !' वाली. वह डरी-सहमी डाक की ओर चली. ख़ूब गोरी. पचासी से भी ऊपर उम्र. सफ़ेद धोती. मज़बूत काठी. उस उम्र में भी देह झुकी न थी. एकदम करेकमान. दांत सब घिसकर मसूढ़े में सट गये थे. मगर टूटा एक न था. अभी भी मकई का भूजा खाती थी बुढ़िया.

मां आकर बेटे के आगे खड़ी हो गयी. मुंह पर अपराध-बोध. बूझ तो गयी ही थी अपना अपराध.

'तुम्हारा दिमाग़-विमाग़ ख़राब हो गया क्या ?' बेटे ने सप्तम स्वर में जिरह शुरू किया, 'माथे में थोड़ा भी गूदा नहीं रहा ?' कांके भेज दें ?

मां सटकदम.

'वह साला कि मेहमान था हमारा जो तुमने पहली थाली परोसकर उसके आगे धर दी ?'

तभी नीचे से दही का कटोरा लिये मालकिन आयी. उसने कटोरा मेज़ पर रखा, एक नज़र सास पर फेकी और थोड़ा-सा किनारे होकर खड़ी हो गयी.

'अब तुमको यहां से भगायेंगे ?' बेटे ने फैसला सुना दिया, 'जाओ अपना सब सामान बांधकर तैयार हो जाओ. हम कैनका को बोल देंगे. वह कचहरी से आयेगा और तुमको लेते जायेगा. भले वहीं रहना गांव में....'

'इनका यदि मन ही हुआ उसको खिलाने का तो हमसे कहतीं. हम करते उसका उपाय.' मालकिन बीच में ही बोली.

बूढ़ी ने नज़र उठकर उसको देखा. वह नज़र बोल रही थी, 'तुमको हम पहचानते नहीं हैं गे नटिनियां ! तुम देती उसको खाने के लिए. जैसी ख़ाक पड़े घर की थी, वैसा ही बना दिया हमारे बेटे का भी घर... और बेटा ही कौन दूध का धोया. धोंछ-धोंधी मिल गये दोनों.....'

'नहीं, यह यहां बहुत बदमाशी करने लगी.' बेटा बोला, 'अब, इसको यहां रहने ही नहीं देंगे. जाओ, जाकर तैयार होओ

११ मार्च १९४०, तेलघी (भागलपुर, बिहार);
एम. ए. (हिंदी), पी-एच. डी.

कथाबिंब के हितैषी व नियमित लेखक

जाओ भागो ?' बेटे ने इतने ज़ोर से डपटा कि उसके धक्के से बूढ़ी मां की काठ हो गयी देह हरकत में आ गयी. वह मुंह नबाये चुपचाप चली गयी.

'उस दिन रिक्शावाले को पेड़ा खिला दिया !' इधर बेटा स्वगत मुद्रा में देह धुनता रहा, 'पर दीपा की बीवी को दूध ही दे दिया. कुछ न कुछ ख़ुराफ़ात यह करती ही रहती है...'

'इतना ही करती हैं !' मालकिन ने झींका दिया, 'कितनी बात तो हम आपसे गो लेते हैं. किसी को गोयठा उठा के दे दिया तो किसी को पैसा...'

'पैसा भी ?'

'तब ! जहां किसी ने इनके आगे रोदन पसारा कि इनको दरेग आ जाता है. फिर तो बूझिए कि हो गया निहाल. अपने अपने पास जो चोराया-नुकाया होगा, वह तो दे ही देंगी. ऊपर से चाहेंगी कि लोग के भी पर्स या अलमारी से निकालकर दे दें...'

'हां ऽ ?'

'तब !'

यह बात सही थी. बूढ़ी के हृदय में दरेग और ममता बहुत थी. दूसरे का दुख देखकर द्रवित हो जाती थी. स्वभाव भी कुछ वैसा ही था. औढर वाला. एक दिन साहेब ऑफिस से आया. साथ में कुछ सामान था. रिक्शावाला सामान लेकर भीतर आया. साहेब तो दनदनाता ऊपर चला गया. मालकिन भी सामान धरवाकर साहेब के पीछे-पीछे ही ऊपर. बूढ़ी बरामदे पर बैठी थी. ख़ूब टहाटही धूप और गर्मी थी. रिक्शा वाले ने जो आंगन में नल देखा तो उसकी प्यास जग गयी.

'दादी ! थोड़ा-सा पानी पी लें ?' रिक्शावाले ने बूढ़ी से पूछा.

'हां पी न लो बेटा !' बूढ़ी बोली. और तभी उसके माथे में आया कि गरमाये हुए में खाली पानी नुकसान नहीं करेगा ? उसने रिक्शावाले को देखा. वह कम उम्र का ही था. यह भी तो किसी का बेटा ही न है ! बूढ़ी की ममता उमड़ आयी. इसकी भी जान उतनी ही क़ीमती है !...

बूढ़ी उठी. ऊपर तक नज़र दौड़ायी. पतोई कहीं नहीं दिखी.

'ए बेटा, रुकना ज़रा !' बूढ़ी ने रिक्शावाले से कहा जो नल पर हाथ-मुंह धोकर पानी पीने का सुर-सार कर रहा था.

वह रसोई में घुसी. चारो तरफ नज़र फिरायी. मगर खाने का कुछ न दिखा. रोटी का पॉट खाली था. धोछिया बनाती भी तो° है ऐसा नाप-जोख़कर कि घट जाये, मुदा बढ़ न पाये ! ...उसका मन कुढ़ गया.

तभी उसकी नज़र पेड़ा वाले बोयाम पर पड़ गयी. उसने ढक्कन उठकर दो पेड़े निकाल लिये.

'लो बेटा, इसको खा लो तब पानी पीना !' बूढ़ी धीमे से बोली.

रिक्शावाले ने घर के बने तलहत्थी भर-भर के जो पेड़े देखे तो उसकी आंखों में भूख और कृतज्ञता की आंच एक साथ उठी. वह हपाहप खाने लगा. उसी समय मालकिन आ गयी. उसने जो रिक्शावाले को पेड़ा खाते देखा तो उसकी देह में आग लग गयी. वह अपनी देह को उठ-उठ के पटकने लगी. रिक्शावाले को भी ख़ूब छोटा-नीचा सुनाया और ऊपर जाकर शिकायत भी कर आयी.

वैसे ही एक दिन वह दूध वाली घटना हो गयी. पड़ोस की परमिलिया माय धड़फड़ायी आयी. बूढ़ी वहीं बैठी थी.

'हमको एक चुरू दूध दीजिए माता जी !' वह गिड़गिड़ाकर बोली, 'हमारा दूध फट गया और रतना का बेटा दूध के लिए रिरिया रहा है.'

मालकिन ऊपर जाकर लेट गयी थी. बूढ़ी ने उसके हाथ से गिलास लिया और रसोई तरफ चली. वह सोचती जाती थी, इसमें इतना गिड़गिड़ाने की क्या बात है ! घटती-बढ़ती तो गिरस्ती में लगी ही रहती है. और उसका उपाय भी हो जाता है. परिवार-समाज अड़ोसी-पड़ोसी इसी दिन के लिए न होते हैं. ...घर में दूध की कोई कमी तो थी नहीं. दो-दो गायें लगती थीं. उसने गिलास भर दिया. भरा गिलास देखकर परमिलिया माय का मुंह डबडबा गया.

मालकिन नीचे उतरी और उसने जो दूध का भगोना देखा तो उसका माथा ठनका. इस बीच ज़रूर कुछ ओर-फेर हुआ है ! वह अपनी एक-एक चीज़ पर नज़र रखती थी.

'सरकार जी !' उसने सास से पूछा, 'दूध कम लगता है, किसी को दिये हैं क्या ?'

'हां दुलहिन, परमिलिया माय आयी थी. तुम सो रही थी. उसका दूध फट गया था. बोली कि पोता रो रहा है तो हमने थोड़ा-सा दूध दे दिया.'

'थोड़ा-सा दिये ! बरतन देखने से तो लगता है कि आधा सेर से कम नहीं दिये हैं. आप हमको हांक न देतीं कि अपने से ही...!' वह बोलते-बोलते रुक गयी.

मगर बूढ़ी ने वह बात भी सुन ली जो उसने मन में रख ली थी. '...अपने से ही मालकिन बनने लगती हैं !' उसका जी जल उठा. मन में तो आया कि कहे, मालकिन जो बने भी तो अपने बेटे की कमाई पर, तुम्हारे बाप-भाई की कमाई पर नहीं...

'हम काहे के लिए मालकिन बनेंगे दुलहिन !' वह बोली, 'हमारा भी जब राज-पाट और अपना समय था, तब ख़ूब मालकिन बने. अब तुम लोगों का समय और राज-पाट है, जैसे मन भावे करो. हमको तो वह बेचारी निहोरा करने लगी तो हमने गिलास में थोड़ा-सा दूध दे दिया. अब उस गिलास में आधा सेर अंट गया हो कि पांच सेर...'

उस तरह के अपराध बूढ़ी से होते ही रहते थे.

❐

पीछे में एक किरायेदार था. उधर दो कमरे थे. एक में बूढ़ी का डेरा था. दूसरे में वे सब जीव रहते थे. एक ही कमरे में पूरा परिवार. दो जीव अपने और तीन बच्चे, दो बेटी, एक बेटा. भले लोग थे. मगर ग़रीबी के मारे. मरद उड्ढ काम करता था. मौगी एकदम निमुंही थी. आंख में लोर न मुंह में बोल.

एक बार उनका लड़का बहुत ज़ोर से बीमार पड़ गया. चौक वाले होम्योपैथ से दवा दिलवाई. मगर रोग ने सुना नहीं. बच्चे की तकलीफ़ बढ़ती गयी. एक रात हालत बहुत बिगड़ गयी. काना-पीटी होने लगी. बूढ़ी ने सुना तो उठकर गयी.

बच्चे की दशा देखकर बूढ़ी का प्राण सूख गया. वह बाय मे चला गया था. अब यह बच्चा क्या संभलेगा ! बूढ़ी ने सोचा और बेकल हो गयी.

'इसको घर में से रही हो काहे !' बूढ़ी बिगड़कर बोली, 'किसी बढ़िया डागडर से काहे नहीं दिखाती हो ? ऐसे में तो बच्चा...'

'से रहे हैं लाचारी में न मैयो !' बच्चे की मां रो-रोकर कहने लगी', दो-चार सौ भी हाथ में होगा, तभी न जायेंगे बढ़िया डागडर के यहां. फीस, जांच, दवा-दारू, सब में पैसा चाहिए. सरकारी अस्पताल का तो हाल जानते हैं...'

'मुदा बच्चे की हालत तो ठीक नहीं है. यह तो अब किसी को पहचानता भी नहीं है. इसको दिखाना ज़रूरी है. पैसा हरदम किसके पास रहता है. मगर काम कोई रुकता है. पैचा-पालट करके भी आदमी बखत संभालता है कि...'

'नहीं देता है कोई मैयो ! आपकी पतोहू से भी कितना निहोरा किये, गोड़-हाथ पकड़े, मगर नहीं सकारा, कहती हैं, हमारे पास पैसा ही नहीं है. ग़रीब का कोई सहारा नहीं होता है मैयो !'

'दुर वह दरिदराही कहां से देगी ! उन दोनों को तो सबसे बेशी हाही घुस गयी है, बस हाय पैसा ! हाय पैसा !...'

'आपके पास तो होगा ही नहीं, कहां से होगा ! यही सोचकर आपको नहीं टोके मैयो... यदि हो रखा-सैंता कुछ तो दीजिए न, हम लौटा देंगे, न भी लौटा सकेंगे तो बूझियेगा पोता में लग गया, हमारे बेटे को बचा लीजिए मैयो !' कहकर वह बूढ़ी के पैर पर गिर पड़ी और फूट-फूटकर रोने लगी, 'जिनगी भर गुन गायेंगे मैयो ! इस निआसरा का आसरा बन जाइए ! हमारे बेटे को बचा लीजिए !...'

भर रात सब जीव बच्चे को अगोरकर बैठे रहे. बहनों तक ने आंख न मूंदी. वैसे में भला किसको नींद होती. भोर हुई तो बूढ़ी चुपचाप उठकर अपनी कोठरी में आ गयी. आहिस्ता-आहिस्ता अपनी टिनियां बक्सी खोली. उसके नीचे से एक पहुती निकाली. उसी पहुती में बूढ़ी का ख़ज़ाना था. एक गिन्नी दो-चार अंग्रेज़ों के समय वाले चांदी के सिक्के, कुछ नमरी नोट, थोड़ी सी रेज़गारी. बहुत तो पुरानी जो अब दो-चार ही बचे, एक बार मोह जागा, कितने दिन का जोगाया पैसा था वह ! यही सोचकर जोगा था कि बेला-बखत काम देगा. मुदा अब हमको यह क्या काम देगा ? बूढ़ी मन से मोह निकालने लगी. हमको अब सामर्थ कहां है कि कुछ करेंगे. हमारी जिनगी तो अब दूसरे के माथे पर की मोटरी है. ठांव तक पहुंच दे कि बीच राह में ही पटक दे. अपने बूते तो यह चलने वाली है नहीं. तब इसका जोगकर क्या होगा ? ...और जो कहीं उन दोनों को महक लग गयी तो छीनकर भी ले ही लेंगे. तब उस भरे पोखर मे हमारी यह दो-चार बूंदें बिला ही तो जायेंगी. उससे तो अच्छा है कि बच्चे की बीमारी में लग जाय. भले एक सुकाम हो जायेगा. एक जान बच जायेगी...'

बूढ़ी हाथ में नोट लिये तत-मत करती रही. पैसा चीज़ ही है वही. और यह बात भी तो वह बूझती ही थी कि वह लौटेगा नहीं. कहां से लौटायेंगे ? उन लोगों का हाल कि कोई छिपा है. कितना कुछ तो वह पतोहू से चुरा-छिपाके देती रहती है. ...नहीं, देना है तो करजा-पैचा कहके नहीं. बूझेंगे अपने ही पोते में लग गया...

तभी उस बच्चे की छवि उसकी आंखों में नाचने लगी. आ हा, कितना चंचल और हिलमिलिया बच्चा था. और अभी किस हालत में है. यदि ठीक से इलाज होगा, हम करायेंगे, जो कुछ हमारे पास है, सब लगा देंगे... वह झटके से उठी और कोठरी से बाहर निकल गयी.

'बुधना माय ! इधर आव ?' उस कोठरी के मुंह पर से उसने धीमे स्वर में हांक दी.

बुधना माय फुरफुरा के निकल आयी.

'लो इसको रखो. पांच सौ है. और यह अब तुम्हारा हुआ. हमको लौटाने की दरकार नहीं है... सुन बेटी, मलकिनियां पूछे तो बताना मत, नहीं तो दोनों जीव मिलकर हमको नोंच खायेंगे. जाव, जल्दी से जल्दी बच्चे को लेकर भागो !...'

बुधना की मां मुंह बाये, बौधी की भांति बूढ़ी को ताकती रह गयी. उसकी आंखें छलछला आयी थीं.

'मुंह क्या ताक रही हो, जाव न ! तुम पहले बच्चे को देखो. जाव !' कहकर बूढ़ी अपनी कोठरी की ओर मुड़ गयी.

उसने पहुती बंद की. उसको बक्सी के नीचे घुसाया और बक्सी को चौकी के नीचे सरका दिया.

दिन हुआ. वे लोग बच्चे को डाक्टर के पास ले गये. इलाज शुरू हुआ. बच्चा संभल गया.

मालकिन ने सब देखा. अकनाती रही. ये लोग पैसा लाये कहां से ? किसने दिया इतना पैसा ? कहीं सरकारजी ने तो नहीं दिया ? गोड़-हाथ पकड़ के ख़ूब लोर चुवाया होगा. इनको दरेग आ गया होगा. स्वभाव तो इनका है ही ख़राब...

उसने बुधना माय से ख़ूब खोद-खोदकर पूछा, मगर वह एक ही बात बोलती रही कि बुधना के बाबू कहीं से करज़ा करके लाये थे.

सास से भी पूछा,

'उसको पैसा आपने दिया है ?'

'किसको दुलहिन ?'

'बुधना माय को ?'

'हमारे पास पैसा कहां है, जो हम देने जायेंगे !...'

'नहीं, यदि दिये भी हैं तो कोई बात नहीं. खाली जना दीजिए कि कितना दिये हैं. तब न हम लोग भी ध्यान रखेंगे...'

'नहीं-नहीं, हम किसी को पैसा-वैसा नहीं दिये हैं. तुम्हीं सोचो न कि हमारे पास कौन पैसा होगा ?'

उतने के बाद भी उसको विश्वास नहीं हुआ. लगता रहा, बुढ़िया ने पैसा दिया है ज़रूर, ख़ाली हमको बताती नहीं है... ❐

बूढ़ी सामान समेटती थी और सोचती थी अपने आज के अपराध के बारे में जो कि बेटा-पतोहू के लेखे अक्षम्य था. असल में बूढ़ी उस युग की प्राणी थी जब आदमी में आदमीयत थी और समाज में सामाजिकता. अब युग-ज़माना बदल गया. अब बूढ़ी जैसे लोग कहिए तो इतिहास के साये थे...

बूढ़ी के अंतर में यह बोध तो था कि उससे भूल हुई है. मुदा वह हुई क्यों इसको तो किसी ने नहीं समझा ! वह सब तो खाली बहाना है बहाना. कोई दोख मढ़कर यहां से भगाने का

मनसूबा. हम नहीं बूझते हैं ! ...भले चलें जायेंगे अपना घर. वहां दो-दो बेटे, पतोहू, पोते-पोतियां हैं. ...बूढ़ी के माथे में उस घटना की रील चलने लगी.

कनिक मंडल गांव में साहेब का करपरदार था. उसके हिस्से के खेत वही बुनता था. बर-बगीचा की देख-भाल भी करता था. वह अपनी तारीख़ करने आया था. हालांकि यहां के लिए थैला भरकर तर-तरकारी, नींबू, लताम सब लेता आया था. मगर फिर भी ये लोग उसको एक पेट खाना देने वाले नहीं थे. एक कप चाय तो किसी को सुमन से देते ही नहीं हैं. ऐसे छोंछ हैं दोनों. पूछो, किसके लिए करते हो दिन-रात हाय-हाय ?

कनिक आने के बाद कुछ देर साहेब के साथ खेती-पत्ती का क़िस्सा करके बूढ़ी के पास आ गया था. बैठकर गांव-घर की बातें सुनाता रहा. वहीं नल पर नहाया-धोया.

'अब जाते हैं दाढ़ी कचहरी !' तैयार होकर कनिक बोला, 'तारीख़ करके उधर से ही पार टप जायेंगे. वहां जाकर फिर मालजाल भी न देखना है. और तो कोई करने वाला है नहीं. एक ठो बचवा है तो वह अभी करने लायक़ ही नहीं है. और उसको ई सब काम में लगाते भी नहीं हैं. ...हां, उसको पढ़ा तो रहे हैं दादी ! कहते हैं, पढ़-लिखकर निकल जाव इस लसका (दलदल) से बेटा ! नहीं तो देख ही न रहे हो बाप का हाल, पुछ्छ ढीला हो जायेगा. ...नहीं, पढ़ने में है चांसगर. मास्टर सब भी बड़ाई करते हैं. ...एकदम दादी, देह बेचकर भी उसको पढ़ाने की कोरसिस करेंगे. अब उसका भाग जो हो. वह तो हम नहीं न दे सकेंगे...'

बूढ़ी हं-हां करती उसकी बातें सुन रही थी और मन में सोच रही थी, यह बेचारा नहा-सोन्हाकर घर से भूखा ही चला जायेगा ! खाना तो तैयार है, मगर अभी किसी ने खाया नहीं है. बूढ़ी का मन कचोट उठा. अभी यदि अपने घर में होता तो ऐसे भूखा जाता ?...

'तब दादी, चलते हैं !' तभी कनिक बोला.

'नहाकर ऐसे ही भूखे चले जाओगे बेटा !'

'वहीं कचहरी में फोर मिलेगा तो कुछ खालेंगे, दादी !'

बूढ़ी ने इधर-उधर देखा. उसको दुलहिन कहीं नहीं दिखी. बाथरूम से पानी गिरने की आवाज़ आ रही थी. उसने समझा, वह नहाने चली गयी. बूढ़ी हरखित हो उठी. वह जानती थी कि दुलहिन जब नहाने के लिए घुसती है तो उसको पहर लग जाता है. तब तक तो...

'रे बेटा, ज़रा-सा रुको. खाना बन गया है, खा लो दो कौर. ऐसे घर से भूखे क्या जाओगे !' कहकर वह रसोई में गयी और एक थाली में भात-दाल-तरकारी परोस लायी.

'लो, खा लो जल्दी-जल्दी !' बूढ़ी ऐसे बोली जैसे चोरी कर रही हो.

कनिक भी तो सब बूझ ही रहा था. वह तातल खाना ही किसी तरह गप-गप निगलने लगा. अभी वह आधा भी न खा सका था कि मालकिन जाने किधर से प्रगट हो गयी. उसने कनिक को खाते देखा, मगर बोली नहीं कुछ. चुपचाप लौट गयी.

उसको देखते ही बूढ़ी बक हो गयी. कनिक का भी कौर बीच में ही अटक गया. बूढ़ी एक टक उसी को देखती रही. वह ऊपर चढ़ रही थी. बूढ़ी बूझ गयी कि आज उसको बड़ा दांव मिल गया.

❐

बूढ़ी सामान सहेजकर बैठी रही. बेर झुक गया, मगर कनिक का कहीं पता न था. सांझ हुई तो साहेब आया. बूढ़ी धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़कर ऊपर आयी.

'कनिक चला गया ?' बूढ़ी ने बेटे से पूछा.

'हां, वह तो निकल गया होगा. काहे ?' वह ऐसे बोला जैसे कुछ न जानता हो.

'नहीं, हम भी चले जाते उसी के साथ !' बूढ़ी भी वैसे ही बोली जैसे कुछ बात न हुई हो.

साहेब मां का मुंह देखता कपड़ा बदलता रहा. उसका पारा चढ़ गया.

'तुम एकदम से पगला ही गयी क्या गे ?'

'काहे ?'

'एक तो ग़लती भी करती हो और ऊपर से चाहती हो हम लोगों को बदनाम करना. वहां जाकर यही न कहोगी सबको कि हमको भगा दिया ?'

'हम तो पगली-बतहिया हो ही गये बेटा ! समताह तो हो तुम दोनों मौगी-मरद.' बूढ़ी ने कनखी से देख लिया था कि मलकिनियां आकर कोठरी के मुंह पर खड़ी कनसुवा ले रही हैं, 'अब हम जो भी अच्छा-ख़राब हैं, हैं. चले जायेंगे, जाकर अपने गांव-घर में रहेंगे.'

'यहां नहीं रहोगी ?'

'नहीं.'

'काहे क्या हो गया यहां ?'

'सुन बेटा, तुम दोनों जीव हो गये डोम-डोमिन. आदमीयत का दरेश नहीं है तुम लोगों में. लाज-लेहाज तक धोकर पी गये. ...हमको तुम कल भेजवा दो घर. हम यहां नहीं रहेंगे ?' कहकर बूढ़ी पलटी और कमरे से निकल गयी.

वे दोनों जहां थे, वहीं काठ हो गये.

देवगिरि, आदमपुर घाट मोड़,
भागलपुर (बिहार) ८१२००१.
फोन : ०६४१-२४२१९५४

कहानी

सुबह की चाय

सुबह उठकर पहले प्रभा बाहर बैठक वाले कमरे की खिड़कियां खोल देती है. रातभर बंद खिड़कियां खुलते ही हवा का झोंका कमरे भर में भर जाता है. करीने से परदे को सरकाने के बाद सुबह ही सुबह बरामदे में पड़े अख़बार पर एक नज़र डालकर अपने दूसरे कामों में लग जाती है. समीर के उठने का इंतज़ार रहता है कि कब वह उठे और हाथ-मुंह धोकर खिड़की के पास वाले सोफ़े पर आ बैठे. तब तक वह चाय और टोस्ट बना लेती है.

खिड़की के बाहर सामने वाले मकान के छोटे-से बग़ीचे में पेड़ों और पौधों के बीच हवाएं दौड़ती-भागती रहती हैं. कभी-कभी छोटे-छोटे परिंदे उन डालों पर लुका-छिपी खेलते हैं. परिंदों की किचमिच कानों से आ लगती है. आम, कटहल और देवदारु की पत्तियों के बीच धीमी-धीमी सरगोशियां होती रहती हैं. चाय और टोस्ट लेकर जब प्रभा खिड़की के पास आ बैठती है, तब समीर भी तैयार होकर आ बैठता है. इस मकान में आये तीस-बत्तीस साल हो गये. तबसे यह क्रम जारी है. दोनों को अवकाश के बाद अब इस समय इन क्षणों का बड़ी शिद्दत से इंतज़ार रहता है. कब जीवन के बीतते समय की घड़ी बंद हो जाये, किसी को पता नहीं. अकेले हो जाने से पहले अकेलेपन की पीड़ा दोनों मन ही मन भोगते रहते हैं.

शाम की उदासी प्रभा के चेहरे पर छायी रहती है. ख़्याल आता है, अपने छोटे से शहर में रहते उस मकान का, जिसके छत की नींव काफ़ी दिनों बाद पड़ी थी. पहले खर-फूसों से बने, इसी मिट्टी से बने मकान में कितनी ख़ुशहाली थी. भाई-बहनों के बीच नन्हीं-सी प्रभा ने कितना न उत्पात मचाया था. पेड़ों पर चढ़कर फल तोड़ना, कुएं से पानी खींचकर ताबड़-तोड़ नहाना, स्कूल जाते समय पैरों से जूते न रहने के बावजूद सरपट दौड़ना, शाम होते ही सबकी नज़र बचाकर बच्चों के क्लब में शामिल होकर रास रचाना, नाचने, कवायद करने और खेलों में सबसे अव्वल, बड़ी होकर नाच सीखने और सिखाने के पीछे बड़े भैय्या की डांट कम नहीं सुनी थी. लेकिन वह सब फिर भी नहीं छूटा और फिर कॉलेज में आते ही समीर की नज़र से बच नहीं पायी. खूंटे से बंधने के पहले तक जीवन में जो उल्लास, प्रकृति के प्रति सम्मोहन और भविष्य की सुखद कल्पना का सागर लहराता था, वह इस उम्र तक आते न आते सूख गया.

अब शाम की उदासी प्रभा के चेहरे पर छायी रहती है. अब वह सत्तर की हुई है. इतने सालों की भाग-दौड़ के बीच जीवन के मर्म को आत्मसात किया था. पतझड़ और बसंत के बीच के व्यवधान को बड़ी सहजता से पार करती रही. कहीं कोई क्लेश नहीं, कोई दुर्भावना नहीं, किसी प्रकार की शिकायत नहीं. लेकिन अब ? शाम की उदासी चेहरे पर छायी रहती है. अनायास ही हाथ से फिसल जाता है, अतीत को पकड़ने का साहस.

बचपन में अपने छोटे-से मकान की नयी बनी छत से जब वह दूर दिगंत में पसरे पहाड़ों की श्रृंखला को देखती और रात में उन पहाड़-जंगलों के बीच जलती आगों को देखती तो वह मां से पूछती,

'यह रौशनी क्यों, मां ?'

'जंगल-पहाड़ पर रहने वाले आदिवासियों के घरों की रौशनी है. बहुत दूर है, इसीलिए ऐसा लगता है.'

लेकिन आग की यह दीपशिखा उसे किसी किस्से-कहानी से कम नहीं लगती. कोई परी रहती होगी जो मशाल लेकर दौड़ती भागती रहती है. उसी सम्मोहन से प्रभा रात को चुपके से खुली छत पर जा चढ़ती. उस क्षण वह परी हो जाती. जो मन ही मन पहाड़ के जंगलों में जा छिपती. मशाल उसके हाथ में होती. छत के नीचे मां, भाई-बहन बड़े उतावले में उसे खोजते, कहां गयी होगी इस वक़्त ? नीचे उतरने पर डांट पड़ती, 'इस ठंड में क्या ज़रूरत है ऊपर जाने की ?'

सिद्धेश

पिता चुप लगा जाते. पिता जानते थे कि प्रभा अपने भाई-बहनों में सबसे अलग है, जीवन में वह ज़रूर गुल खिलायेगी. वे मन ही मन मर्माहत होते, लेकिन किसी से कुछ नहीं कहते ! सचमुच उसने गुल खिलाया था, बिना किसी को बताये समीर के जीवन में आ गयी थी, हमेशा के लिए.

अब प्रभा न सोलह-बीस साल की परी रही और न अपने छोटे-से शहर के मकान की वह छत. सब बिक-बिका गया. अतीत का सम्मोहन यथार्थ के चौखटे से टकराकर क्षीण हो गया! शाम की उदासी उसके चेहरे पर छायी रहती है.

खिड़की खुलने की आवाज़ से समीर की नींद भी टूट

गयी. ज़रूर प्रभा ने खिड़कियां खोली होंगी उसे जगाने के लिहाज से. लेकिन यह तो उसके सोने के कमरे की खिड़कियां थीं. बाहर की धूप उसके बिस्तर पर आकर लेट गयी. वह उठ बैठा. उसने चाहा कि वह थोड़ी देर वैसे ही लेटा रहे. मगर बैठकखाने में चाय पीने और प्रभा के साथ का वह अमूल्य क्षण हाथ से निकल जायेगा.

❑

प्रभा ने अपने जीवन के चालीस साल काम-काज में बिता दिये. लेकिन उल्लास और जिजीविषा में कमी नहीं आयी. अपना मकान बनाया, बच्चे बड़े होते गये. पता नहीं चला कि समय कैसे-कैसे खिसकता चला गया. अब किसी के प्रति सम्मोहन नहीं रहा. समय के थपेड़ों में जर्जरित होती रही, भीतर ही भीतर. किसी से कुछ कहा नहीं. समीर से भी नहीं. लेकिन समीर जानता है, प्रभा कच्ची मिट्टी से बनी नहीं है, वह आग में तपकर पुख्ता हो गयी है. फिर क्या कारण है कि शाम की उदासी उसके चेहरे पर छायी रहती है ?

समीर ने उठकर हाथ-मुंह धोये, फिर वह बैठक खाने में आ गया. चाय-टोस्ट रखकर प्रभा अख़बार के पन्नों पर झुक गयी. कोई बात-चीत नहीं. कुछ समय ऐसे ही बीता. केवल चाय-टोस्ट की प्लेटें खरखराती रहीं. प्रभा की चाय ठंडी हो रही है. इस ओर उसका ध्यान नहीं है. एक नज़र उठाकर प्रभा की ओर देखा, उसकी आंखें डूबी-डूबी थीं. चेहरे पर फिर वही शाम की उदासी.

'क्यों, क्या हुआ ?' समीर ने टोका.

'सोचती हूं, हम दोनों में से कोई एक नहीं रहेगा, तब ?'

समीर चुपचाप चाय पीता रहा. बाहर की तेज़ हवा बगीचे के पेड़ों से टकराती रही. आम के पत्तों पर देवदारु के पत्ते झुक आये थे. पत्तों के बीच छिपा कोई परिंदा अपने पर मार रहा था. उसकी छटपटाहट पत्तों के हिलने से जाहिर हो रही थी.

'पता है, पहले कौन जायेगा ?' समीर ने आहिस्ते से कहा.

'ईश्वर न करे, मैं पहले चली जाऊं.'

'क्यों ?'

'मैं तुम्हारी देख-भाल कर लूंगी.'

'फिर ? उसके बाद अकेले हो जाने पर कौन तुम्हारी देखभाल करेगा ?'

प्रभा चुप हो गयी. बच्चे बड़े होकर अपनी दुनिया के मालिक हो गये. लड़की अपनी ससुराल में ख़ुशहाल है, लड़का मकान के ऊपर तल्ले पर रहकर अब भी सामने आता जाता है. वह दूसरे शहर जाकर थोड़े ही इनकी दुनिया से रूबरू होगा ? कहने के लिए दूरी उतनी नहीं है. फिर भी नज़दीक रहकर कौन किसकी कितनी ख़बर रखता है !

सिद्धेश्वर

कहानी के क्षेत्र में पिछले चालीस सालों से निरंतर सक्रिय

कथाबिंब के हितैषी व नियमित लेखक

अपने मकान के ऊपरी तल्ले वाली छत पर प्रभा नहीं जा पाती. फूलों के टब सूख गये हैं. छत के सामने जो कुछ दिखाई पड़ता है, न वह बचपन में सम्मोहक पहाड़-जंगल है और न हाथ में मशाल लिये परी घूमती है. अब हाथ की शिराएं सूखकर कांटा हो गयी हैं. ललाट पर सिकुड़नें उभर आयी हैं. गाल धंस गये हैं. चेहरे पर वही शाम की उदासी छायी रहती है.

एक-एक कप चाय और, समीर ने अखबार अपनी ओर खींच लिया. फिर वही सब. राजनीति में दल-बदल, ख़ून-ख़राबा, आतताइयों की धमकी. पुलिस जनता में मुठभेड़, पांच की मौत, कई घायल. विज्ञापनों में नंगी औरतों से पटे हुए रंगीन पन्ने. प्रभा अपने आप में डूबी हुई थी. समीर ने अखबार को एक तरफ सरका दिया. फिर कुछ सोचकर बोला, 'चलो, इस बार कहीं घूम आते हैं. अच्छा होगा, उसी पहाड़ पर, जिसे तुम अपने मकान की छत से देखती रही हो. दो-चार रोज ही सही.'

'क्या होगा बाहर जाकर. अब तो यहीं...'

❑

लेकिन प्रभा और समीर गये थे, उसी पहाड़ पर जहां प्रभा की परी रहती थी. पुराने शहर जाकर अपने बिक गये मकान की छत की ओर ललचाही नज़रों से ताकझांक कर आयी थी. पहाड़ पर जाकर आदिवासियों को देखा था, उनके छोटे-छोटे घरों को, रात में जलती ढिबरी की रौशनी में उस परी की छाया को ढूंढने की कोशिश की थी. मगर कुछ हाथ नहीं आया था. साल वनों के विशाल दरख़्तों की माया चारो ओर दिखाई पड़ी थी. सूखे पत्तों के ढेर, गड्ढर में बंधे डालों को ढोते हुए मरदों के चेहरों पर जीने की ललक और मजबूत हाथों में कुल्हाड़ी की चमक. प्रभा अपने बचपन में खो गयी परियों की तलाश में खो गयी थी.

लौटकर उसने थोड़ी खुली सांस ली थी. मगर कब तक? फिर वही भीतर की दहशत. अकेली हो जाने पर क्या होगा. बेटे-बेटी का भरोसा मरुभूमि में जलाशय की तलाश की तरह लगता रहा. प्रभा आज तक दूसरों को देती रही है, लिया कुछ भी नहीं. जो कुछ लिया, उससे दुगना लौटा दिया है. अब केवल समीर के लिए ज़िंदा रहना चाहती है. कभी-कभी उसे भयानक सपने आते हैं. कहीं का कहीं भटक गयी है, रास्ता खोज नहीं पा रही अथवा ट्रेन पकड़ने की आपाधापी में कुछ भूल आयी है. यानि सब समय अंदरूनी दबाव को महसूस करती रही है.

बाहर से हवा का झोंका आते ही प्रभा को होश आया. बैठे-बैठे दिन चढ़ आया था. रसोई में जाने का समय. समीर के लिए नाश्ता तैयार करने का समय. ऊपर वाले तल्ले से खट-पट की आवाज़ आ रही थी. दैय्या आ गयी थी और वही ऊपर नीचे झाड़-पोंछ में लगी थी.

❑

समीर की भी अपनी दुनिया है. इसे प्रभा बखूबी समझती थी. बल्कि अपनी दुनिया से अलग हटकर उसे अपने दोस्तों, मज़लिसों में जाने के लिए प्रोत्साहित करती थी. तब वह दिनभर के लिए घर में अकेली रह जाती थी. खाने-पीने और प्रेम के अलावा भी जीने के लिए कोई न कोई बहाना तो चाहिए ही.

कई बार समीर बाहर जाने को टाल जाता. कहता, 'अब इस उम्र में जाने-आने की परेशानी उठा नहीं पाता हूं.'

प्रभा अपने उदासी के क्षणों में भी उसे बाहर भेजकर एक संतोष का अनुभव करती थी.

'क्या करोगे, दिनभर घर में बैठे-बैठे बोर होते रहते हो. जाओगे, लोगों से मिलोगे तो मन बहल जायेगा.'

यही बात समीर भी चाहता है कि प्रभा को कहे, मगर प्रभा जब भी किसी कारण से बाहर जाती तो समीर अपने भीतर बड़ा असहाय महसूस करता था.

प्रभा को बाहर जाने का एक ही बहाना था. जबसे अवकाश-प्राप्त किया है, तबसे वह 'टीचर्स फोरम' में हर सप्ताह दो दिन जाने लगी थी. अपने पुराने सहकर्मियों के साथ मेल-मुलाकात के अलावा विभिन्न स्कूलों में कार्यरत अध्यापिकाओं की समस्याओं को मिलकर सुलझाती. स्कूलों में बोनस, ग्रैच्यूटी, तथा अंदरूनी समस्याओं को लेकर वे सब आतीं. तब प्रभा फोरम के सदस्यों एवं महिला सेक्रेटरी के कहने पर आंदोलन में भाग लेती. प्रभा का एकमात्र जुड़ाव इस फोरम से था. यह फोरम चल पड़ा था. स्कूल प्रधान इनकी बातें मान लेती थीं.

लेकिन फोरम के लिए निकलते समय समीर को सब समझा-बुझा जाती, 'देखो, शाम के नाश्ते में यह-वह बना दिया है. याद करके खा लेना. मुझे आने में देर हो सकती है.'

अमूमन वह रात के भोजन के काफ़ी पहले लौट आती. आने के बाद रात का भोजन बनाती. इस बीच फ़ुरसत निकालकर कभी किताबें पढ़ती या पत्रिका उलटती-पलटती. टी. वी. पर कोई अच्छा सीरियल होता, उसे देखती.

इस सबों के बीच उसे अगले सुबह का इंतज़ार रहता. वहीं से दिनचर्या की शुरुआत होती थी. खिड़की के पास बैठकर समीर के साथ का वह अमूल्य क्षण, चाय-टोस्ट के ख़तम होने तक दुख-सुख की बातें. भविष्य की चिंता, अकेले पड़ जाने का अहसास. कभी अतीत की सुखद यादों में खो जाती, तो उसके चेहरे पर फिर वही शाम की उदासी की छाया पड़ने लगती थी.

कभी-कभी प्रभा को अपना अकेलापन भी अच्छा लगता. समीर को कई बार इसका अहसास करा चुकी थी.

'अच्छा नहीं लगता, रोज का टंटा, एक धुरी पर चक्कर लगाना. मन करता है, कहीं सबसे अलग होकर अकेले जीवन यापन करूं. क्या हुआ, संतान के रहते कौन-सा सुख मिला ?'

समीर कहता, 'लड़के-बच्चे सब तुम्हारे अपनी दुनिया में रच-बस गये हैं, इन्हें तुम्हारे स्वाभिमान की चिंता क्यों होने लगी. ज़माना बदल गया है. अब वह ज़माना नहीं रहा, जब सब मिल जुलकर सुख-दुख बांट लेते थे.'

'हां इनके लिए चालीस सालों से खटती-मरती रही. अब जब हमारी देख-भाल का समय आया तब किनाराकशी कर ली.'

जबसे लड़के बहू और नन्हे के दूसरे शहर जाकर रहने की बात तय हो चुकी है, तब से प्रभा जीवन के प्रति और सतर्क हो उठी है. समीर और प्रभा ने जिस तरह जीवन की शुरुआत की थी, उसका परिणाम यह देखने को मिलेगा इसका अहसास प्रभा को ज़्यादा कचोटता है. समीर पुरुष है, वह इस तरह के जीवन को झेलने के लिए प्रस्तुत है, मगर प्रभा ?

उसके चेहरे पर गाहे-बगाहे शाम की उदासी की छाया मंडराती रहती है. शाम के बाद अंधेरे की पीड़ा, यही सत्य है !

❑

रात भर बारिश होती रही थी. सुबह तक झरी लगी रही. सुबह के सात बजे थे. दिन उठने का अंदाजा नहीं लग पाया था, इसलिए समीर सोता रहा था. आकाश बादलों से घिरा था, धूप का नामो निशान नहीं था. प्रभा अपने निश्चित समय पर उठ गयी थी. उठकर सदर दरवाज़ा खोलकर बाहर टहलने निकल जाती थी. आज नहीं जा पायी.

समीर को पिछले कई दिनों से कहती आ रही थी कि वह सुबह उठकर थोड़ा टहल लिया करे. समीर को सुगर, ब्लडप्रेशर दोनों हैं.

'तुम मेरे साथ उठते क्यों नहीं. डॉक्टर ने भी कहा कि सुबह उठकर टहलना सेहत के लिए फ़ायदेमंद होता है.'

समीर कोई न कोई बहाना बना देता.

'कल ठीक से रात में नींद नहीं आयी, इसलिए देर तक सोया रहा.' जबकि समीर को नींद न आने की कोई बीमारी नहीं है. डॉक्टर ने उसे आश्वस्त किया है.

'इस उम्र में गहरी नींद आना स्वास्थ्य के अच्छे लक्षण हैं.' फिर भी उसे दिनभर में तीन गोलियां पानी के साथ निगलनी पड़ती हैं.

समीर ने बैठक खाने से आवाज़ लगायी, 'क्या हुआ, चाय बन गयी ?'

'चाय कब की बनी पड़ी है. तुम उठे तब न. फिर से गरम कर रही हूं.' प्रभा यह कहते हुए रसोई खाने में ही बहुत देर तक खटर-पटर करती रही. जब आयी, तब आठ बज चुके थे. यह समय उनके चाय पीकर उठ जाने का था.

बाहर बारिश थम चुकी थी. सामने वाले बग़ीचे में भीगी पत्तियों से रह-रहकर बूंदें टपक रही थीं. फूलों के छोटे-छोटे पौधे बारिश की बौछारों से ज़मीन पर झुक आये थे. पास के मकान के गेट के पास वाले कामिनी पेड़ से फूलों की सुगंध आ रही थी. पेड़ सादे फूलों से लदा था. फूलों के प्रति प्रभा का आकर्षण बहुत ज़्यादा है. वह फूलों और पत्तों से ग़मले सजाती रहती है. जन्मदिन, चाहें रवींद्रनाथ ठकुर हों या नज़रूल उसे उनके जन्मदिन कंठस्थ हैं. उसकी याददाश्त जबरदस्त है. समीर को ख़ुद अपना जन्मदिन याद नहीं रहता. वह याद प्रभा दिलाती है. समीर याद कर भी प्रभा के जन्मदिन के दिन ऐन मौके पर भूल जाता है. इस बात की रंजिश प्रभा को नहीं होती, मगर प्रभा ऐसे वक़्त उदास रहती है.

शाम की उदासी उसके चेहरे पर छायी रहती है. आख़िर क्या करे वह ? आगामी आने वाले दिनों की आशंका, अकेलेपन के अहसास से होने वाली पीड़ा का समाधान किस तरह से करेगी ? समीर आगे चला गया, तो पहाड़-सा समय कैसे बितायेगी ? बेटे का परिवार तो शहर जाने की प्रतीक्षा में था. बेटे का बेटा यानी पोते को अच्छी शिक्षा चाहिए. उसे शहर के अच्छे स्कूल में दाख़िला देना था. समीर के भीतर इसकी क्या प्रतिक्रिया है, इसे प्रभा पूरी तरह से समझ नहीं पाती.

समीर ने चाय की चुस्की लेते हुए प्रभा की तरफ़ देखा. अंधेरे के बाद जिस तरह दिन का उजाला फैलता है और उसकी आभा कोने-कोने तक फैल जाती है, उस तरह का आभास प्रभा के चेहरे पर छायी उदासी के बीच से मिला.

'आज ज़्यादा देर तक नहीं बैठ सकता.'

'क्यों ? देर से उठेगे, तो इस सुख से भी वंचित करोगे?' प्रभा ने कहा.

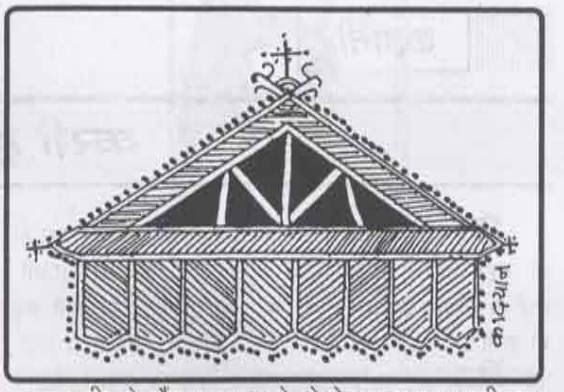

समीर ने चौंक कर प्रभा के चेहरे पर नज़र गड़ा दी. यह कैसा सुख है, किस सुख की बात कर रही है प्रभा ? सुबह-सुबह चाय का कप लेकर खिड़की के पास का यह क्षण, जब दोनों दीन-दुनिया की बाधा को ठेलकर बैठते हैं और अपनी पीड़ा दुख, सांत्वना, संवेदना की बातों में समय को भूल जाते हैं - क्या इसी को सुख कहते हैं ?

'ठीक है. अभी बजा ही क्या है ? साढे आठ.'

'नहीं आज रविवार भी तो है. नन्हे का स्कूल नहीं है. वह भी इतनी जल्दी नीचे थोड़े ही उतरेगा. मां-बाप की भी छुट्टी है.'

'हां, दूसरा दिन होता तो वह अब तक नीचे का एक चक्कर लगा जाता.'

'एक बार तो ज़रूर नीचे उतरता. छुट्टी के दिन तो छत पर केवल उसके धप-धप दौड़ने की आवाज़ मिलती है.'

'ठीक कहा. आज टहलने गयी नहीं ?'

'कैसे जाती. बारिश हो रही थी. कल से तुम भी मेरे साथ उठोगे ?'

'क्यों, कोई जोर-ज़बरदस्ती है ?'

'हां, है. जैसे भी हो, अपने स्वास्थ्य का ख्याल रखो, तुम्हें अभी काफ़ी दिनों तक ज़िंदा रहना है. जब तक मैं चाहूं.'

'वाह, मृत्यु क्या किसी के चाहने पर आयेगी ?'

ऊपर सीढ़ियों पर किसी की पदचाप सुनाई पड़ने लगी थी.

'हां, मृत्यु की इच्छा रखो तो जल्दी आती है. मृत्यु नज़दीक आने पर तब लगता है, मैं और कुछ दिन बचता.'

पदचाप धीरे-धीरे नज़दीक आती गयी. दोनों चौंककर उठने वाले थे कि कान में आवाज़ आयी, 'दादी, जी ?'

सामने नन्हा फरिश्ता हंसता हुआ खड़ा था.

प्रभा के चेहरे की उदासी क्षण भर के लिए ग़ायब थी.

श्रीपुर, मध्यमग्राम बाजार,
कोलकाता-७०० १३०
फोन : (०३३) २५३७६३७६

कहानी

कसी हुई मुट्ठियां

अन्य दिनों की अपेक्षा आज दफ़्तर में हलचल कम ही थी. यहां तक कि समसामयिक राजनैतिक विषयों पर जुगाली-चर्चा के साथ फ़ाइलें उलट-पुलट करने वाले सिन्हा और शर्मा बाबू भी कुर्सी पर पीठ टिकाये डाक-पैड के क़ाग़ज़ों को चुपचाप उलट-पुलट रहे थे. संभवतः यह कल क्षेत्रीय विधायक द्वारा किये गये आकस्मिक निरीक्षण के दौरान दी गयी धौंस-डपट, गाली-गलौच तथा उसके बाद 'इइ' द्वारा ली गयी विशेष-बैठक में तू-तू-मैं-मैं के साथ एक दूसरे पर लगाये आरोप-प्रत्यारोप की खुमारी हो.

इस सन्नाटे को साहब के चैंबर से चीख़ी कॉलबेल ने तोड़ा तथा बजरंगी ने अपनी रोज़ की चाल से सेक्शन ऑफ़िसर को साहब के चैंबर की ओर जाने का इशारा करते हुए संदेश दिया "मैडम, आप..."

फ़ाइलों में खोयी मिसेज़ खरे ने प्रतिक्रियास्वरूप जब तीन मिनिट तक भी उसकी ओर नहीं देखा तो उसे लगा शब्द शायद ज़र्दे के आनंद में खोकर ठीक से बाहर नहीं निकल पाये हैं. उसने शब्दों का दोबारा प्रयोग करने की बजाय टेबल पर ठक्-ठक् किया. चौंककर खरे मैडम ने सिर ऊपर किया - "क्या है..." कुछ बोलने के बजाय उसके इशारे की ओर देखकर मिसेज़ खरे बौखला गयी - ''कितनी बार कहा मुंह में ये ढुचका भरकर मत रखा करो, समझ में आता ही नहीं... चले कहां, ये फ़ाइलें साहब की टेबल पर व्यवस्थित रखो, मैं आती हूं.''

पच्चीस-तीस मिनिट बाद साहब के चैंबर से मिसेज़ खरे निकलीं तथा बायीं ओर लेखा विभाग की ओर मुड़कर एक टेबल के सामने खड़ी हो गयीं - "मिस गर्ग आप मेरे पास आइए."

"मैडम कुछ विशेष..." खड़े होकर युवती ने प्रश्न किया.

"ऑफ़िस में विशेष क्या हो सकता है, सिवाय रूटिन वर्क के." पलटकर वापस जा रही खरे मैडम के हावभाव देख, समीरा गर्ग समझ गयी, साहब के चैंबर से निकलकर तलब करने का मतलब ही, कुछ विशेष. उसने अपने सामने रखी वाउचर फ़ाइल बंद कर आलमारी में रखी. कुछ फ़ाइलों को दस-पंद्रह मिनिट तक निरुद्देश्य उलट-पुलटकर टाइम-पास किया तथा खरे मैडम से मुखातिब होने के लिए खड़ी हो गयी.

"बैठे ना, खड़ी क्यों हो ?" मैडम ने चश्मा नाक पर व्यवस्थित करते हुए उसकी ओर ग़ौर से देखा तथा बिना किसी भूमिका या घर-जग की बातों में समय बर्बाद किये पैग़ाम सुनाते हुए बोली - "देखो, साहब का आदेश है कि आप अपने सेक्शन का प्रभार बरुआ को सौंपकर मुझे असिस्ट करें. उनका यह भी कहना है कि ऑर्डर निकालने के पूर्व आपको यह बता दिया जाये."

फ़रमान सुनते ही समीरा एकदम हरकत में आ गयी - "मैडम ज्वाइनिंग से ही मैं यह सेक्शन डील कर रही हूं, मेरे काम के प्रति आपने या साहब ने कोई असंतोष प्रकट नहीं किया, फिर यह..."

"देखो सरकारी कामकाज में अपनी मर्ज़ी को दरकिनार कर अफ़सर की आंख और अंगुली के इशारों से काम करना होता है." मैडम अपनी बात का ऑफिशियल पलटा शुरू करे उसके पूर्व ही समीरा - "मुझे किसी का असिस्टेट होना पसंद नहीं," कहते हुए तुनककर खड़ी हो गयी.

"ठीक है, आप बॉस से जाकर बोल दीजिए..." तल्ख आवाज़ के साथ तेज़ निग़ाहों से मैडम ने उसे घूरा तथा क्रोध से बिलबिलाते हुए सामने रखे डाक-पैड को साइड की ट्रे में फेंक दिया. समीरा बॉस के चैंबर की ओर जाने की बजाय अपनी कुर्सी पर जाकर बैठ गयी.

डॉ. सतीश दुबे

दिल का दौरा पड़ने के बहाने मौत पिता को इतनी जल्दी छीन लेगी इसकी कल्पना उसने नहीं की थी. इस दफ़्तर में वे संभागीय लेखापाल थे और उसी नाते समीरा को अनुकंपा नियुक्ति यहां मिली थी. पिता के दफ़्तर में नौकरी करने के लिए मानसिक रूप से बमुश्किल वह अपने को तैयार कर पायी थी. वस्तुतः मां तथा छोटे भाई साहिल की ज़िम्मेदारियों के कारण यह समझौता करना उसके लिए ज़रूरी हो गया. पिता के नहीं रहने के कुछ दिन-माह में ही वह महसूस करने लगी मानों उसकी उम्र एकदम बढ़ गयी है. इस दफ़्तर में आठ माह पूर्व जब उसने ज्वाइन किया था तब यहां अराजक स्थिति थी. जिन साहबी साहब के हस्ताक्षर से उसका आदेश निकला था, वे भ्रष्ट आचरण तथा अन्य अनेक आरोपों की गिरफ़्त में निलंबित होकर मुख्यालय में अटैच थे. अंतरिम व्यवस्था के लिए डेप्यूटेशन पर आये एम.के. जैन साहब को एक माह भी नहीं हुआ था कि ये जी. आर. बिंदल

साहब आ गये. समीरा को जैन साहब ने ज्वाइन कर, खरे मैडम को हिदायत दी थी कि मिस गर्ग को किसी सेक्शन का स्वतंत्र प्रभार दें, नये लोगों में काम करने का जज़्बा तथा क़ाबिलियत घिसे-पिटों की अपेक्षा अधिक होती है. तब उसे शिकायत-प्रकोष्ठ मिला था. बिंदल साहब को चूंकि पुरानी गंदगी को साफ़ कर नया माहौल तैयार करने के लिए भेजा गया था, इसलिए उन्होंने पहली मीटिंग में सब चेहरे देख-पढ़कर पुराने सिस्टम में आमूल परिवर्तन करने की कोशिश की. कमीशन और सौदेबाज़ी कम हो इसलिए उन्होंने स्थापना तथा लेखा विभाग महिला अहलकारों को देने का निर्णय लिया. खरे मैडम और कुछ अन्य सीनियर्स की राय के बावजूद बिंदल साहब ने समीरा का नाम लेखा विभाग के लिए तय किया था. वह तभी से अब तक अपना काम मुस्तैदी से करती चली आ रही है. कोई शिकायत नहीं. फिर यह दोयम दर्जे का परिवर्तन क्यों ? सोचते-सोचते अंदर की आग नथुनों के फूलने तथा आंखों के रक्तिम होने के रूप में बाहर प्रकट होने लगी. "वह साहब से बातें क्यों करें, उन्हें ज़रूरत होगी तो खरे मैडम द्वारा कान भरने के बाद वे स्वयं उसे याद करेंगे." अपना निर्णय लेकर उसने वॉटर-बॉटल से पानी पीकर हलक तर किया तथा एक फ़ाइल निकालकर यूं ही पन्ने पलटने लगी.

कुछ मिनिट ही बीते होंगे कि उसकी सोच के अनुरूप बजरंगी ने टेबल बजाकर ध्यानाकर्षित करते हुए अपने स्टाइल में संदेश दिया - "गर्ग मैडम आप..." सभी फ़ाइलें खरे मैडम के माध्यम से डील होने के कारण, अफ़सर से पहली बार सामुख्य के कारण हो रही सिहरन को क़ाबू में करते हुए वह चैंबर की ओर बढ़ गयी -

"मे आय कम इन सर..."

"यस्स...इट्स ए गुड हेबिट, दूसरे लोग भरभराते हुए चैंबर में अचानक ऐसे आते हैं... मानो जीभ लपलप करता अचानक कुत्ता घुस आया हो..." रिवॉल्विंग चेअर पर पीछे की ओर मुंहकर बैठे बिंदल साहब ने घूमकर, क्रीम कलर के बीच झांकते स्कॉय ब्लॉउज, कानों तक उतर आयी विस्तृत केशराशि, सिर पर दोनों पाटों के बीच हल्की सी पगडंडी की तरह काढ़ी गयी मांग वाले सांवले लुभावने चेहरे को जैसे ही देखा वे, हतप्रभ रह गये. लगा मानों इस चेहरे को पहले कभी निकट से देखा है. अंगूठे-अंगुली के पोरें कुछ देर आंखों पर घुमाते हुए दायें-बायें हिल-डुल रही चेअर को स्थायित्व देकर समीरा को ग़ौर से देखकर बोले - "बैठें". समीरा साइड में लगी कुर्सी पर बैठने का जैसे ही उपक्रम करने लगी साहब ने अपने सामने की ओर संकेत किया - "इधर बैठो ना..."

नारियल की तरह गोल चेहरा तथा आगे की ओर निकली दाढ़ी वाले अफ़सर के चेहरे की ओर समीरा ने तीखी निग़ाहों से घूरा तथा बोली - "थैंक्सू सर, मैं यहीं ठीक हूं..."

१२ दिसंबर १९४०, इंदौर;
एम. ए (हिंदी/समाजशास्त्र), पीएच. डी.

प्रख्यात साहित्यकार, कथाबिंब के हितैषी व नियमित लेखक

अफ़सर ने सामने रखे काग़ज़ात को उल्टापुल्टा कर पढ़ते हुए ऊंची गरदन की - "समीरा गर्ग, व्यावसायिक प्रबंधन में स्नातक, हार्टअटैक में गये हमारे यहां के संभागीय लेखापाल की डॉटर, जिसे विभाग ने अनुकंपा नियुक्ति दी है. यही आपकी पर्सनल हिस्ट्री है ना."

प्रत्युत्तर देने की बजाय नीचा किया चेहरा समीरा ने ऊंचा कर अफ़सर की ओर प्रमुख मंतव्य जानने के लिए देखा. उसके मौन को बेधते हुए अफ़सर ने आवाज़ का वाल्यूम बढ़ाया - "अनुकंपा का मतलब समझती हो ना, खैर ज़रूरी नहीं कि समझो, पर इतना समझना तुम्हारे लिए ज़रूरी है कि नौकरी में ज़िद्द और इच्छा इन दो शब्दों को त्यागना पड़ता है. तुम्हें अकाउंट-सेक्शन में ही रुचि क्यों है ?"

'सर, मैंने ऐसा तो नहीं कहा. मेरा तो केवल यह निवेदन है कि मुझे किसी भी सेक्शन का स्वतंत्र प्रभार दिया जाय ताकि मैं अपनी कार्यक्षमता का परिचय दे सकूं." अफ़सर को चुप रहते देख अपनी शक्ति संचित करते हुए वह आगे बोली - "सर अपनी ग़लती को समझने के लिए मैं यह भी जानना चाहती हूं कि मुझे इस सेक्शन से क्यों हटाया जा रहा है."

प्रथम श्रेणी राजपत्रित अधिकारी ए. आर. बिंदल के ई से इई के पद तक पहुंचने की लंबी सेवायात्रा में यह पहला अवसर था जब "यस-बॉस" के माहौल से हटकर कोई जवाब तलब कर रहा था. वह भी कौन ? बीस-इक्सीस वर्ष की ऐसी युवती जिसका सेवाकाल मात्र चंद महीनों का हो. यही नहीं उनके ही उस बनिया जाति समाज से संबंधित जहां औरतें अभी भी अपनी ही दिवारों और छत में कुंठित हैं. कुछ देर अपने अफ़सरी अहं को नियंत्रित कर, चिंतन-मंथन कर समीरा की ओर एकटक देखते रहने के बाद, धीरे धीरे बोले- "देखो मिस गर्ग ऑफिशियली कार्यों में प्रैक्टिकल होना पड़ता है. जानती हो कल उस एम. एल. ए.

ने हंगामा इसलिए किया था कि उसके चहेते कॉन्ट्रेक्टर का पेमेंट नहीं हुआ. बता सकती हो तुमने के. के. कंस्ट्रक्शन्स के बिलों का पेमेंट क्यों नहीं किया..?"

अपने को बेवजह गुनाहगार के कटघरे में खड़ा करते सुन समीरा एकदम हरकत में आकर ज़ोरों से बोली - "सर मैंने तो अपनी टीप के साथ बिल मैडम के थ्रू सबमिट कर दिये थे. मैडम ने ही 'स्वीकृति प्राप्त होने के बाद प्रस्तुत करें', आदेश देकर फ़ाइल लौटा दी थी..."

"और गुरुकृपा ट्रांसपोर्ट के बिल..."

"सर वे तो ठेकेदार को पेमेंट करना थे. निविदा की शर्त (४) (३) के अनुसार ठेकेदार ने डोर-डिलीवरी स्वीकार की थी. बावजूद इसके मैंने तो टीप सहित बिल सबमिट कर दिये थे."

"फिर उस पर क्या हुआ ?"

"सर आपने कीप पेंडिंग के आदेश दिये हैं, फ़ाइल लाती हूं..." खड़ी होने का उपक्रम कर रही समीरा को रुकने का संकेत करते हुए अफ़सर समझाने के अंदाज़ में बोले - "ऐसे प्रकरणों में ही लचीला होकर विकल्प प्रस्तुत किये जाते हैं, जिसे तुम्हें समझने में समय लगेगा." अफ़सर ने उसकी ओर आंखें घुमाकर कुछ देर सोचते रहने के बाद कॉल-बेल बजायी तथा खरे मैडम को बुलाकर कहा - "जनरल पेमेंट का प्रभार बरुआ को तथा स्टॉक की सेलेरी वगैरह मिस गर्ग को, संबंधी आदेश तत्काल जारी कर दो. ...मिस गर्ग तुम्हें इसमें तो कोई आपत्ति नहीं होगी..."

इतने बड़े अफ़सर की जुबान से इस प्रकार की भाषा सुनकर भौचक्क निगाहों से पहले अफ़सर फिर समीरा की ओर मिस खरे ने देखा तथा "जी सर" कहती हुई चैंबर से बाहर निकल गयी और उसके पीछे अफ़सर की ओर कृतज्ञ दृष्टि डालते हुए समीरा.

❑

सूरज के उदित और अस्त होने के साथ गुज़रते चंद दिनों में समीरा ने दफ़्तर की उन प्रशासनिक बारीकियों को जाना जिनका संबंध इस तंत्र के नियामकों से जुड़ा होता है. मगरमच्छ, बड़ी मछली के साथ इस सागर में पड़े दूसरे जीवजंतु कैसे जीव ही जीव को आहार बनाते हैं, इसकी प्रक्रिया उसके सामने उजागर हुई. "साहनी साहब को निलंबित नहीं पुरस्कृत किया गया है. ये अख़बार-नवीस या विरोधी नेता हल्ला नहीं मचाते तो वे ग्रामीणों और फ़सलों की प्यास बुझाने के लिए कुछ फ़ाइलों पर तो कुछ नाममात्र के लिए रेत-मिट्टी के पोखर बनाम डाबरे तथा स्टाप-डैम बनाकर प्रभारी मंत्री से उद्घाटन करवाते रहते." एक दिन यह वृतांत पास वाली टेबल के रामन्ना से तो दूसरा जोशी से और यूं जैसे जैसे स्टॉफ से निकटता बढ़ती गयी जनाकांक्षाओं के केंद्र इस दफ़्तर का कच्चा चिट्ठा पक्के सबूतों के साथ सामने आता गया. अपनी दूरबीनी खोज के ज़रिये उसने यह भी जान लिया कि साहनी साहब ने उसके ईमानदार, सहज और ग़लत कार्यों से नफ़रत करने वाले पापा को अपने षड्यंत्र के संजाल में लिप्त कर निरंतर तनाव में रहने तथा अपने कार्यों के लिए मौक़ा आने पर उन्हें ज़िम्मेदार सिद्ध कर निलंबन की स्थिति निर्मित कर दी. कहते हैं यह हादसा मूर्तरूप लेकर उनकी सामाजिक तथा परिवारिक छबि धूमिल नहीं कर दे इसी संदर्भ में उन्हें भयंकर दिल का दौरा आया और वे अपने परिवार को अकेला छोड़कर चले गये. समीरा ने यह भी जाना कि उसकी अनुकंपा नियुक्ति और पापा के क्लेम्स का तुरत-फुरत निबटारा अपने दोषों को छिपाने या किसी प्रकार के संभावित हो-हल्ले को दबाने के लिए था. परिवार के प्रति विशेष सहानुभूति व्यक्त करने के लिए नहीं.

उसने सोचा शुक्र है कि, इस पूरे पूर्व माहौल में साहनी की सोच तथा कार्यप्रणाली से हटकर बिंदल साहब हैं. उसके ही नहीं दफ़्तर के पूरे स्टॉफ के प्रति रीति-नीति, साफ़-सुथरी कार्यप्रणाली उन्हें दूसरे अधिकारियों की तुलना में अलग ही प्रतिष्ठित करती है. यह धारणा उसके मस्तिष्क में पैठने की कोशिश कर ही रही थी कि एक दिन सीनियर रामन्ना ने बताया - "मैडम सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं." यह गोमुखी अभी अपने पैर जमा रहा है, देखना जम जाने के बाद ये ही पैर हमारे माथे पर होंगे. जहां से आया है वहां की ख़बर है कि यह थ्री-डब्लू-एडिक्ट मीठी छुरी है. आपको यह क्या बताना कि बनिया स्वार्थ के लिए बाप का भी नहीं होता, फिर यह तो बनिया भी है और अफ़सर भी.

समीरा इन तमाम टिप्पणियों पर चिंतन करते अपने कार्य को मुस्तैदी से अंजाम देने की कोशिश में जुटी हुई थी. वैसे उसकी टेबल का पूरा कार्य मिसेज़ खरे के माध्यम से ही होता था, पर, समयावधि के देयकों पर हस्ताक्षर तथा कुछ अन्य भुगतानों के आदेश संबंधी प्रकरणों की व्याख्या करने के लिए फ़ाइल के साथ उसे स्वयं बिंदल साहब से रूबरू होना पड़ता था. एक दिन ऐसे ही देयकों पर हस्ताक्षर करते हुए, बार-बार कनखियों या दूसरे देयक की प्रस्तुति के पूर्व एकटक देखना तथा उसकी व्यक्तिगत ज़िंदगी के बारे में जानकारी लेना उसे नागवार लगा, पर करती क्या ?

इस मुद्दे पर गहरे से मंथन करने पर वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि यह तो बहुत स्वाभाविक है, हर नया व्यक्ति दूसरे के बारे में ऑफिशियल स्टेटस से हटकर कुछ जानने की कोशिश करता है. ऐसे ही अंतर्द्वंद्व से गुज़रते-उबरते दिनों के दौरान ऑफिस ऑवर्स समाप्त होने पर घर जाने के लिए बैग व्यवस्थित कर द्वार की चौखट से बाहर निकली ही थी कि, "मैडम सुनिए" संबोधन ने उसे पलटा दिया. देखा - ड्राइवर भवानीसिंह तेज़ चाल

से उसकी ओर आ रहा है. उसके इस संदेश से कि, "साहब ने याद किया है," वह सिहर उठी. बिंदल साहब के मुस्कुराकर यह कहने पर कि, "मैडम बिंदल आयी हुई हैं उन्हें तुमसे मिलना है. संडे है ज़रा आ जाना, खरे शाम को पांच बजे तुम्हें पिकअप कर लेगी." वह कांप उठी. क्रोध से तिलमिलाकर सोचा - "बिना मेरी स्वीकृति के पूरा प्रोग्राम तय करने वाला यह होता कौन है..." कोई बहाना बनाकर इंकार करने के पूर्व आवाज़ आयी - "समझ गयी ना, इसीलिए बुलाया था, नाऊ यू मे गो..."

समीरा को बाहर निकलते हुए प्रत्येक क़दम भारी महसूस होने लगा. मौसम खुशनुमा होने के बावजूद उसे लगा मानो उसके आसपास गहरा कुहासा छाया हुआ है. पार्किंग से स्कूटर बाहर निकालकर घर पहुंचने तक वह ऑफ़िसरों द्वारा इसी प्रकार की प्लानिंग करके बदसलूकी करने संबंधी सुने अनेक क़िस्सों से उपजी शंका-कुशंकाओं की सुरंग में खोती गयी.

रोज़ की अपेक्षा विपरीत मनोदशा में प्रवेश करने तथा बैग एक तरफ़ फेंककर सोफ़े पर धम्म से बैठता देख मां हक्की-बक्की रह गयी. - "क्या हुआ बेटी", का प्रत्युत्तर नहीं मिलने पर अधिक कुरेदने की अपेक्षा कुछ क्षणों बाद वह पानी तथा चाय सेंट्रल टेबल पर रखकर उसके पास बैठ गयी. मां अगला संवाद शुरू करे उसके पूर्व ही समीरा को मां के चिंतित या व्यथित होने का ख़्याल आया. उसने किंचित मुस्कुराकर तथा पानी का ग्लास और चाय की प्याली हाथ में लेकर मां की ओर देखा. -"आप नहीं पी रही हैं". "मैंने और साहिल ने अभी पी है. तू पी ले और मुझे पहले बता क्या बात है." चाय की चुस्कियों के साथ समीरा ने जब अपना मन उढेला तो मां कुछ देर उसके भाल पर बनती-बिगड़ती लकीरों को देखती रही फिर समझाने के अंदाज़ में बोली - "समीरा, देखो बेटी संसार में अलग-अलग तरह के लोग होते हैं. हर किसी को एक जैसा मानकर शंका करना ठीक नहीं. बाहर हम अपने आत्मविश्वास से जीते हैं, दूसरे के दबाव से नहीं. और फिर सौ के बजाय एक बात यह कि, तुझे नहीं जमता हो तो नौकरी मत कर. मैंने तुझसे पहले भी कहा था, हमें रुपये-पैसे की कमी तो है नहीं, और जिसके कुल की देवी लक्ष्मी हो उसको इसके बारे में सोचना भी नहीं चाहिए. तुझे साहब के यहां नहीं जाना हो तो मुझे विभा मैडम का नंबर दे मैं उसे बता देती हूं."

मां की उत्साह भरी बातों ने समीरा को सोफ़े से खड़ा कर दिया - "आज रहने देते हैं, कल सोचेंगे. इस लफड़े में आज साहिल से बातें ही नहीं हुईं. अपने कमरे में है ना ?" स्वस्थ मन की मुस्कुराहट के साथ मां की ओर देखते हुए, समीरा ऊपर की सीढ़ियों की ओर निकल गयी.

अगले दिन का सूरज जैसे-जैसे आगे बढ़ता गया समीरा के दिल-दिमाग़ के सूरज पर क़िस्म-क़िस्म के विचारों की

बदलियों के टुकड़े छाते-मिटते रहे. शाम के पांच बजे फ़ोन की म्यूज़िक बेल सुन अज्ञात सिहरन उसके शरीर में रेंगने लगी. तयशुदा कार्यक्रम के अनुसार कॉल खरे मैडम का ही था, तयशुदा शब्दों के साथ - "बस निकल रही हूं, तैयार रहना." मां के इस सुझाव पर कि - "मन में कोई खुटका हो तो इंकार कर दे", उसका जवाब था - "मां तुम चिंता मत करो तुम्हारे और पापा के संस्कार और शिक्षा मेरी थाती हैं."

❑

नगर के एक ओर स्थित नयी पॉश कॉलोनी के एक क्वार्टर के सामने शोल्डर बैग व्यवस्थित कर खरे मैडम की कार से उतरते हुए समीरा ने वैचारिक अंतर्द्वंद्व को चेतना की गठरी में बांध दिया. डोर-बेल बजते ही अजीब सन्नाटे के बीच दरवाज़ा खोलने वाले व्यक्ति से पूछा - "मंगल कैसे हो ? साहब से कहो हम लोग आ गये हैं." - "जी मैडम" कहता हुआ, ऑफ़िस का क्वार्टर-प्यून कम कुक अंदर चला गया. थोड़ी ही देर में मोटी धारीदार स्कॉय-कलर की ड्रेस में साहब ने प्रवेश किया तथा दोनों को घूरते हुए मुस्कुराकर बोले - "आओ बैठे." कुछ देर की चुप्पी के बाद समीरा की ओर देखकर हंसते हुए बोले - "समीरा गर्ग हमारे कहने पर आ गयी, अच्छा लगा..." उनकी घोड़े जैसी हिनाहिनाहट तथा हंसी के कारण हिल रहे स्थूल शरीर तथा थिरक रही तोंद की ओर विद्रूप दृष्टि डालकर समीरा ने 'मिसेज़ बिंदल कहां हैं ?' भाव से भरी प्रश्नसूचक दृष्टि डालते हुए खरे मैडम की ओर देखा. घाट-घाट का पानी पिये बिंदल साहब, उसकी उत्सुकता को शायद समझ गये - "मिस गर्ग शायद मैडम के बारे में जानना चाह रही हैं, वे भवानी को लेकर मंदिर तथा एक दो परिचितों से मिलने चली गयी हैं. बस आती ही होंगी."

साहब का प्रत्युत्तर सुनकर समीरा के कानों में साहिबी-चरित्र के ऐसे बहानों से भरे बहुत से क़िस्से गूंजने लगे. उसकी इच्छा हुई घुटन भरे इस घोंसले से चिरैया के बच्चे की तरह फुदकी मारकर या अनचाही जगह पर बैठी चील की तरह पंख

फैलाकर उड़ जाये. धीरे-धीरे शीत के जल्दी पसर रहे अंधियारे के माहौल में अपने अनुभव या अन्य बातें करते हुए थोड़ी-थोड़ी देर में कनखियों से घूर रहे साहब ने जब हल्की सी मुस्कुराहट के साथ खरे मैडम से प्रेम पगे शब्दों में कहा - "विभा ज़रा किचन में जाकर देखो मंगल ऐसा क्या नाश्ता बना रहा है जो इतना विलंब हो गया." तो समीरा न जाने क्यों अज्ञात भय से कांप कर विभा मैडम के बारे में उनके प्रतिद्वंदियों द्वारा की जाने वाली टिप्पणियों को याद करने लगी.

साहब की आज्ञा का पालन करने के लिए खड़ी होने का उपक्रम कर रही विभा मैडम से पहले समीरा एकदम खड़ी हो गयी तथा उसकी ओर देखकर बोली - "मैडम एक घंटा हो गया है, अब आप रुकिए, मुझे मां और साहिल के साथ एक रिश्तेदारी में ज़रूरी में जाना है वे मेरा इंतज़ार कर रहे होंगे..." एक पैर के घुटने पर दूसरा रखा पैर हिला रहे बिंदल साहब को समीरा की मुद्रा तथा तेवर भरे शब्दों की तीखी आवाज़ ने एकदम हरकत में ला दिया. वे पैर नीचा कर खड़े हो गये तथा दरवाज़े की ओर संकेत करते हुए बोले..." खरे ये लड़की समीरा कुछ ज़्यादह ही टेंशन में है. ऐसा करो तुम भी निकल जाओ. मैं मैडम को बतला दूंगा और कहूंगा, वह तुम लोगों से बात करें..."

खुली हवा में बाहर आकर समीरा ने चैन की ऐसी गहरी सांस ली, मानों कशमकश के बाद गहरी सुरंग से निकलकर आयी हो. कार रोड पर लगा रही खरे मैडम के चेहरे को पढ़ने की कोशिश कर ही रही थी कि मैडम बोली - "मिस गर्ग तुम थ्री-व्हीलर से निकल जाओ मुझे ज़रा दूसरी ओर जाना है." इस रूखी शब्दावली से उसने अंदाज़ लगा लिया साहब की मेहमाननवाज़ी के बदले उसकी क्रिया-प्रतिक्रिया से वह संतुष्ट नहीं है. उसकी मनःस्थिति को महत्व देने की बजाय उसने सहज भाव से उसकी ओर देखकर जवाब दिया, "नो प्रॉब्लेम" और कंधे पर बैग लटकाकर पास ही खड़े एक रिक्शे में बैठ गयी.

अगले दिन डरी, सहमी दफ़्तर में प्रवेश करते हुए उसने सोचा निश्चित रूप से, अब बदले की कार्यवाही होगी, पर ऐसा कुछ हुआ नहीं, यह जानकर उसने मानसिक-संतुष्टि अनुभव की. अगले दिन दफ़्तर से निकलने के लिए फ़ाइले व्यवस्थित कर, बैग साइड के स्टूल से निकालकर टेबल पर रखा ही था कि, बजरंगी को एक महिला के साथ अपनी ओर आते हुए उसने देखा.

सामने की कुर्सी को पीछे की ओर कर महिला को बैठने का संकेत कर वह पलट गया. श्यामवर्णी आकर्षक, स्वस्थ डील-डौल वाली महिला से कुछ जानना चाहे उसके पूर्व ही वह बोली- "मैं मिसेज बिंदल, तुम लोग आयी थीं, रिश्तेदारियों में मिलते-जुलते इतना समय हो गया कि मैं जल्दी लौट नहीं पायी. तुमको देखकर सचमुच बहुत खुशी हुई. तुम बिलकुल वैसी ही हो जैसा समझकर साहब ने मुझे बताया." वह कुछ समझे या सवाल कर उसके पूर्व वह फिर तपाक से बोली - "आज तुम्हें मेरे साथ चलना होगा, घर पर ख़बर कर दो..." मिसेज बिंदल ने बैग में से मोबाइल निकालकर उसके सामने रख दिया. "लेकिन..." "तुम्हारी वेहिकल ना ? उसकी व्यवस्था साहब करवा देंगे..."

कार में बैठी समीरा इस अप्रत्याशित अजीबो-ग़रीब घटना की गुत्थियों में उलझी होने के कारण मिसेज बिंदल से न तो ठीक से चर्चा कर पा रही थी न ही उनके उत्तर ठीक से दे पा रही थी. उसके इस व्यवहार या कोई अन्य वजह के कारण, अचानक आगे की सीट से बिंदल साहब की हंसी के साथ ध्वनि प्रतिध्वनित हुई - "शुभा, घर चलने के बजाय रास्ते में किसी जगह नाश्ता कर लो और समीरा को इसके घर ड्राप कर दो, तुम्हारा मिलना-जुलना भी हो जायेगा. समीरा, भवानी को ज़रा तुम लोकेशन बता दो..."

गाड़ी के रुकने और हॉर्न की आवाज़ सुनकर घर का दरवाज़ा खुला. समीरा के साथ दंपति को देख मां ने बिना बताये परिचय प्राप्त कर लिया तथा मुस्कुराते हुए बोली - "हमारा सौभाग्य है कि आप लोग पधारे..." कुछ औपचारिक-अनौपचारिक, एक ही जातीय-समाज, इसी शहर के मूलनिवासी आरोहा-विहार में बन रहे मकान का काम कम्पलीट होते ही इस शहर में शिफ़्ट होकर एम. बी. बी. एस. कर चुके बेटे प्रत्यूत द्वारा निजी नर्सिंग-होम शुरू करने जैसी चर्चाओं को समीरा के नाश्ता बनाने के लिए अंदर जाते ही विराम देकर मिसेज बिंदल बोली - "साहब आपसे कुछ कहने आये हैं".

"साहब कुछ कहें उसके पहले ही मैं समीरा की ग़लतियों के लिए क्षमा याचना कर लेती हूं."

"नहीं वो बात नहीं..." इस जुमले के साथ बिंदल साहब ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा - "हम आपकी बेटी मांगने आये हैं. जिस दिन मैंने इसको पहली बार देखा, देखता रहा, हूबहू, स्कूटी से कॉलेज जाते वक़्त बस की टक्कर से मौत का ग्रास बनी बेटी पृथा जैसी. रहन-सहन, व्यवहार, बोलचाल, संस्कार-शालीनता, बोल्डनेस सब उसके जैसे गुण... हमारी प्रार्थना स्वीकार करेंगी आप." मां ने बिंदल साहब की कंपकपाती आवाज़ के साथ उनकी नम आंखों को देखा तथा व्यथा में भागीदार बनते हुए बोली - "मांगना क्या वह तो आपकी बेटी है ही, आपके मार्गदर्शन में ही तो उसे आगे बढ़ना है..."

"यह सब अलग बातें हैं. सीधी-सी बात यह है कि हम समीरा को बहू के रूप में बेटी जैसा रखना चाहते हैं..." मिसेज बिंदल ने घरेलू अंदाज में चर्चा को सीधा मोड़ लिया.

"यह तो हमारे लिए..." वाक्य पूरा हो उसके पूर्व ही तेज़ आवाज़ में, "मां !" संबोधन के साथ नाश्ता टेबल पर रखते हुए समीरा ने मां की ओर अर्थसूचक दृष्टि से देखा.

नाश्ते की तश्तरी हाथ में देते हुए मां ने ऐसे मामलों की सामान्य भावी संभावित प्रक्रिया के साथ अपना वाक्य पूरा किया.

बिंदल-दम्पति के बिदा होते ही समीरा मां से मुस्कुराते हुए बोली - "मां आप तो घर बैठे आयी गंगा में नहाने ही जा रही थी बिना यह सोचे कि धारा प्रदूषित है या शुद्ध..."

"बेटे ऐसा कुछ नहीं. तुमसे राय किये बिना मैं निर्णय ले लेती यह तुमने कैसे सोच लिया. वैसे कुछ करेंगे भी तो, सोच-समझ, देखभाल कर. तुम्हें यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा क्या..."

"हां, मां मुझे ऐसे परिवारों से नफ़रत हो गयी है, जहां के मुखिया की मानसिकता अपने स्वार्थ, ऐश और लोभ के लिए दूसरों का शोषण हीं नहीं जान लेने से जुड़ी हो..." अपने इस प्रारंभिक स्पष्टीकरण के साथ उसने पापा के तनाव में रहने के कारणों की व्याख्या करते हुए सीवियर हार्टअटैक को सीधे-सीधे साहनी साहब द्वारा की गयी मानसिक हत्या माना.

"पर बेटे इसका बिंदल साहब से क्या लेना देना." मां के इस प्रश्न का उत्तर तल्खी से देते हुए वह बोली - "मां, नाम बदलने से चरित्र नहीं बदलता. यह "क्लास कैरेक्टर" है, एक ही थैली के चट्टे-बट्टे. ये ब्यूरेक्रेट्स, अफ़सरशाह सब एक जैसे हैं. मां, समाज में कुछ लोग ऐसे होते हैं जो अपनी बिरादरी द्वारा दिये गये चेहरे से पहचाने जाते हैं. इनका एक विशेष चेहरा होता है, नाम नहीं..."

"पर बेटे हर आदमी की व्यक्तिगत ज़िंदगी को उसके कार्यक्षेत्र से जोड़ना न्यायसंगत तो नहीं है !"

"जो भी तुम ठीक समझो. पर मुझे ये लोग पसंद नहीं. जिस माहौल ने पापा की जान ली, उस कसाईवाड़े में मैं रहने वाली थोड़ी ही हूं. अगले ही महीने नोटिस देकर विंग्रो ज्वाइन करने का मैंने मन बना लिया है, रिया मेरी बेस्ट फ्रेंड ने अपने ही सेक्शन के लिए मैनेजमेंट से चर्चा कर ली है..."

"ठीक है, फिर भी अपनी बेटी को तुममें देखने वाले भावुक अफ़सर और परिवार के बारे में, जिसके बेटे ने डॉक्टरी जैसा सेवा का पेशा अपनाया है, ठंडे दिमाग़ से तुम सोचती रहना..."

"मां सोच में मैं आपसे अलग थोड़े ही हूं. पर, ऐसे मामलों की किताब के पेज अभी हम नहीं खोलें तो अच्छा. अभी तो हमको अंतिम समय में मौन आंखों की भाषा को समझकर पापा से हाथ थामकर किये वायदे जिसमें साहिल का कॅरियर भी सम्मिलित है पूरा करना है." पिता के प्रति अपने कर्तव्य का पक्ष मज़बूत बनाने के लिए यह सब कह रही समीरा की तेज़ आंखों तथा उन मुट्ठियों की ओर मां का ध्यान गया जिनकी हर शब्द के साथ कसावट मज़बूत होती जा रही थी.

७६६, सुदामा नगर, इंदौर-४५२००९
फोन : ०७३१-२४८२३१४

ख़ूबसूरत दुनिया के लोग

✍ राधेलाल बिजघावने

आज तक उसे समझ में नहीं आया कि
बेहद ख़ूबसूरत दुनिया भी
बदसूरत क्यों है ?
क्यों है बदसूरत दुनिया
ख़ूबसूरत पहाड़ों, नदियों, झील, झरनों,
पठारों, मैदानों, तीर्थाटनों, पर्यटन स्थलों,
हरियाली के बिछे ग़लीचों के बावजूद.
ख़ूबसूरत दुनिया में रहते लोग
आलीशान सुखद जीवन जीते हुए भी
क्यों करते हैं हत्याएं, आत्म हत्याएं.
ख़ूबसूरत दुनिया में
क्यों पैदा होते हैं
बदसूरत और क्रूर लोग
क्यों फैलाते हैं नफ़रत की आग
घृणा, तिरस्कार, हिकारत की भावनाएं ?
ख़ूबसूरत दुनिया में
क्यों पैदा होते हैं
हत्यारे, आतंकवादी, चरित्रहीन लोग
और आदमी को जंगल
और जानवर में तब्दील कर देते हैं.
ख़ूबसूरत दुनिया में
जन्मने के बाद
आख़िर क्यों मर जाते हैं लोग,
क्यों जीते हैं कीड़ों-मकोड़ों,
अभाव, दुख, पीड़ा, ग़रीबी,
भुखमरी का जीवन.
ख़ूबसूरत दुनिया
आख़िर बदसूरत क्यों होती जा रही है ?
ख़ूबसूरत दुनिया के
बुद्धिजीवी लोग
एटम, नापाम, हाइड्रोजन बम
मिसाइल, बंदूक, बारूद क्यों बनाते हैं ?
क्यों कर रहे हैं चोरी, डकैती, घूसख़ोरी,
सफ़ेद कपड़े पहने बुद्धिमान लोग.
पूरी दुनिया को गुमराह क्यों करते हैं
महानता का लबादा पहने
सभ्यता, संस्कृति के
ऊंचे शिखरों पर बैठे लोग.

ई-८/७३, भरत नगर (शाहपुरा),
अरेरा कॉलोनी, भोपाल-४६२०३९

मशाल जल उठी जब !

"नाम क्या है तेरा," इन्स्पेक्टर ने पूछा.

"अच्छा जी, तो अब हम इतने पराये हो गये कि तुमको हमारा नाम तक याद नहीं रहा."

वो हाथ नचाते हुए बोली, उसके स्वर में उसके धंधे की खनक थी. उसके पास खड़ी उसकी साथिने हंस पड़ीं.

इन्स्पेक्टर चिढ़कर बोला, "बकवास मत कर साली और जो पूछूं बताती जा."

"अच्छा तो लिखो, येलम्मा." उसने सपाट स्वर में उत्तर दिया.

"अरे ससुरी, अम्मा तो तुम सभी हो. अपना असली नाम बता." इन्स्पेक्टर की आवाज़ ग़ुस्से से गर्म होने लगी थी.

पर उसने ठंडे स्वर में जवाब दिया, "असली नाम में कौन से हीरे जड़े हैं साहब. हां धंधे का नाम सुंदरी है."

इन्स्पेक्टर ने कहा, "चलो यही सही. कहां की रहने वाली है."

"कमाठीपुरा" जवाब मिला.

इन्स्पेक्टर फिर हत्थे से उखड़ गया, "मुझे बताती है. वहीं से तो तुम सब हरामज़ादियों को पकड़ कर लाया हूं. जहां की रहने वाली है वहां का पता लिखा स्साली SSS."

सुंदरी ने शब्दों को दृढ़ता का जामा पहनाया, "कहा तो न कमाठीपुरा."

पास खड़े जम्हाई लेते हुए साथी इन्स्पेक्टर ने कहा, "मरने दे न यार. जो लिखाती है, लिखाने दे. बहुत रात हो गयी इस ससुरे समाज सुधार अभियान में. सुबह मजिस्ट्रेट अपने आप निपटेगा इनसे." फिर हवालदार को आवाज़ मारते हुए कहा, "बंद कर दो इन सबको कोठरी में. हम चलते हैं. स्साला क्या मनहूस दिन बीता है ?"

'मनहूस दिन' कोठरी के भीतर लेटे हुए यह शब्द उसके दिमाग़ की दीवारों से टकराता रहा. इस इन्स्पेक्टर को कैसे पता चला होगा कि आज कौन सा दिन है. किसी को भी कैसे पता होगा कि आज का दिन कृष्णा की ज़िंदगी के खंडहर में घायल परिंदे सा क्यों फड़फड़ाता रहता है. कैसे भूल सकती है वह कि इसी तारीख़ को आज से बारह साल पहले वह लाल व सफ़ेद मनकों की माला पहनकर कृष्णा से येलम्मा हुई थी.

कृष्णा यह नाम तब का था जब वह अपने गांव के खेतों में परियों-सी उड़ा करती थी. बरसात से भीगी मिट्टी की सोंधी-सोंधी गंध में छोटी-छोटी शरारतों के खिलौने सजाकर बैठती थी. कौन-कौन सी सहेलियां थीं ? ऊं...हूं अब तो नाम भी याद नहीं रहे. ... अपना ही याद रह गया, यह भी क्या कम है ?

पर, बचपन की वे शरारतें, वे भोले मासूम दिन कितने थोड़े थे. उसके बाद उसे याद है कि मां की तीन बेटियां और हुई थीं. हर बेटी के जनम पर घर में मातम सा छा जाता था. हर बार उसके मां-पिताजी अपने को पहले से अधिक ग़रीब समझने लगते थे. वे दोनों दिन-रात एक दूसरे को कोसने लगे थे. उन्हें कैसे भी हो, पर एक बेटा चाहिए था, बेटा. बेटा जो बुढ़ापे में उनकी देखभाल करेगा, बीमारी से सड़सड़ कर मरने से बचायेगा, उनका अकेलापन दूर करेगा, मरने के बाद चिता को आग लगाकर उन्हें स्वर्ग पहुंचायेगा. बेटियां तो सिर्फ़ बोझ थीं, बोझ. ग़रीब की चादर में चार बड़े-बड़े छेदों जैसी.

बेटे की चाह में उनकी हालत पागलों जैसी हो गयी थी. मंदिरों में घंटे खड़काये, पीरों-फ़क़ीरों के आगे हाथ जोड़े, व्रत उपवास रखे, मज़ारों पर दिये जलाये और जब उन सबसे कुछ न हुआ तो उन्होंने अपनी कोख को ही दांव पर लगा दिया.

संजीव निगम

पास के गांव के देवी येलम्मा के मंदिर में जाकर प्रार्थना की गयी कि 'मां तुम हमें बेटा दो, बदले में हम अपनी जवान होती बेटी को तुम्हारी सेवा में अर्पित कर देंगे.' और देवी भी कितनी चटखारे लेने वाली निकली. एक जवान लड़की की ज़िंदा बलि का स्वाद लेने के लिए उसने बदले में वाक़ई बेटा दे दिया. उसके मां-बाप की ख़ुशी आकाश सी अनंत हो गयी थी. घर में गालियों के बदले ढोल गूंजने लगे थे. वो ख़ुद भी तो कितना ख़ुश थी भैया को पाकर. दौड़-दौड़ कर उसने अपनी सहेलियों को रुई के फ़ाहे जैसे मुलायम भाई के आने की ख़बर सुनाई थी. वो अपने भैया को ख़ूब प्यार करेगी, सजायेगी उसके साथ खेलेगी, बड़ा होने पर पढ़ायेगी. कितने प्यार भरे अरमानों को उसने अपनी बांहों में झुलाया था, सीने से लगाया था. तब उसे क्या मालूम था कि गुड्डे से भैया का आना उस पर क्या सितम ढायेगा.

मां-बाप को देवी येलम्मा को दिया अपना वचन याद आने

लगा, उसे पूरा करने के लिए वे बेताब हो उठे. होते भी कैसे नही? अपने वायदे से मुकरते तो उनकी देवी नाराज़ न हो जाती ! उनके बेटे का अनिष्ट हो जाता तो ! बल्कि देवी ख़ुश रही तो एकाध बेटा और मिल सकता था. बेटी तो वैसे भी जानी थी. चाहे ससुराल जाती या येलम्मा की सेवा में, क्या फ़र्क़ पड़ता है ?

उसे आज भी याद है वह माघ पूर्णिमा का दिन. कैसा महोत्सव-सा था उस दिन येलम्मा के मंदिर में ? उसके जैसी कुछ और अभागिनें भी येलम्मा की सुहागिनें बनाने के लिए सजा धजाकर लायी गयी थी. जब मां उसे सजा रही थी तो उसे अपनी सहेली नईमा के घर का क़ुर्बानी का बकरा कितना याद आ रहा था.

विधि-विधान, पूजा-अनुष्ठान इन सबके चक्रव्यूह में बांधकर उसे येलम्मा की देवदासी बना दिया गया था. इसमें देवत्व क्या था यह तो उसे आज तक नहीं पता चला किंतु दासी शब्द का घिनौना परिचय उसे अवश्य मिल गया था. जवान होने के लक्षण देखते ही सबसे पहले मंदिर के पुजारी ने ही उसे देवी का प्रसाद दिया था. उस दिन वह फूट-फूट कर रोयी थी. ये कैसी पूजा थी देवी की जिसमें तन-मन पर पवित्रता का शीतल चंदन लगने की बजाय गंदगी के कीड़े बिलबिलाने लगे थे. उस रात उसने अपनी समस्त कड़वाहट के साथ अपने मां-बाप को कोसा था.

उस पुजारी ने ही उसे गांव के एक पटेल के सामने परोसा था जिसने उसके साथ दरिंदों सा व्यवहार किया था. पटेल ने बदले में पैसा देकर उसे देवदासी शब्द का असली अर्थ समझा दिया था. और उस दिन वह एक बार फिर बुरी तरह से रोयी थी.

उसके बाद एक और, एक और - सच्चाई के नग्न तांडव ने धीरे-धीरे उसके भीतर की कमज़ोरी को मार दिया. वह एक नयी मज़बूती से भर उठी. जब इस समाज को ही उसकी परवाह नहीं है तो उसे क्यों किसी की परवाह हो. यदि सारा जीवन इसी तरह से जिस्म को आग में जलाना है तो गीली लकड़ी सा धीरे-धीरे क्यों सुलगें ? क्यों न मशाल की आग सा अकड़ कर जलें.

उसने तय कर लिया कि यदि वेश्यावृत्ति ही करनी है तो यों लुक-छिप कर नही करेगी. उसने सोचा, "आख़िर मैं अपनी मर्ज़ी से तो इस गंदगी में आयी नहीं. मुझे धर्म के ठेकेदारों ने इस मार्ग पर धकेला है, फिर तो यह भी एक धार्मिक काम हुआ न !"

और एक दिन वह मंदिर से चलकर इस बदनाम बस्ती में पहुंच गयी. कृष्णा नाम तो मंदिर की चौखट से टकराकर ही विस्मृत हो गया था, यहां पहुंच कर वह सुंदरी हो गयी थी. पूरा नाम था सुंदरी येलम्मा. यहां आने पर उसे एक नये सत्य का पता चला. उसके जैसी कितनी ही देवदासियां इस बाज़ार में बैठी हुई थीं. एक पूरा कोठा देवदासियों का था. पर ताज्जुब इस बात का था कि पतन के इस गर्त में पहुंच कर भी सभी देवदासियां

१६ अक्तूबर १९५९;
एम. फिल. (हिंदी साहित्य)

लेखन : *कविता, कहानी, नाटक, व्यंग्य लेख आदि विधाओं में लेखन.*

प्रकाशन : *लगभग सभी महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन. चौदह नाटकों का आकाशवाणी से प्रसारण. एक गीत एलबम. हास्य नाटक - 'तीन हसीना' का मुंबई में ५ बार मंचन.*

अन्य : *विज्ञापनों तथा लघु फिल्मों का लेखन. जनसंपर्क एवं पत्रकारिता विषयों पर विभिन्न कॉलेजों में अतिथि वक्ता. एस. एन. डी. टी. विश्वविद्यालय के बोर्ड ऑफ स्टडीज (हिंदी) के सदस्य.*

संप्रति : *देना बैंक में मुख्य प्रबंधक (मार्केटिंग).*

देवी येलम्मा से डरी-डरी रहती थीं. अपनी मांग में येलम्मा के नाम का सिंदूर भरे रखती थी, सुबह-शाम देवी की अर्चना करती थीं. उसे इनके इस लिज़लिज़ेपन से नफ़रत थी. वह उनसे कहा करती थी, "क्यों करती हो ये पूजा-उपवास. इसी रास्ते से चलकर तो इधर आयी हो, अब और किस दुर्गति की इच्छा है. माथे पर पूजा की भभूत लगाने के बजाय अपने मन में हिम्मत का त्रिपुंड बनाओ." पर वे नहीं समझती थीं. उन्हें येलम्मा की नाराज़गी का डर था. येलम्मा नाराज़ हो गयी तो अमंगल हो जायेगा. 'अमंगल होगा ? किसका ? इससे ज़्यादा और क्या होगा ? फिर किसका ? घरवालों का, समाज का, धर्म के ठेकेदारों का ! उनके अमंगल की हमें चिंता क्यों हो ? होता है तो हो, ख़ूब हो.'

आज हम सबको ये पुलिसवाले पकड़ लाये हैं. वाह, क्या बात है ? हम पर इल्ज़ाम है कि हम समाज में गंदगी फैला रही हैं ? वाह देवी येलम्मा, ये भी तेरी कृपा है.

ये पुलिसवाले कह रहे थे कि सरकार सबको इस गंदगी से निकालकर अपने-अपने घर वापिस भेजेगी. अच्छा मज़ाक है. कहां वापिस भेजेंगे ? जिस नाली ने गंगाजल को कीचड़ बना

दिया उस गले-सड़े समाज में, छिः कितना दर्दीला अनुभव होगा उन लोगों के पास वापिस जाना जिन्होंने हमें बेरहमी के थपेड़े खाने के लिए अकेला छोड़ दिया था. कौन जायेगा उन अपनों के पास जो बेगानों से भी ज़्यादा पत्थर दिल निकले. नहीं वहां तो नहीं... पर फिर कहां ?

भविष्य की अनिश्चितता के डर से विचारों का चक्रवात एक झटके से टूट गया. उसने गर्दन उठाकर अपने आस-पास लेटी अन्य साथिनों पर नज़र डाली. '...ये सब इतनी निश्चितता से कैसे सो रही हैं ?' उसे एक बार भ्रम हुआ कि उसके आसपास शव ही शव पड़े हैं और उनके बीच वह अकेली है. इस ख़्याल से वह घबराकर उठ बैठी. उसने सोचा, 'मुझे शव नहीं बनना है. मैं नहीं सोऊंगी.'

अगले दिन उन सबको मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया गया. मजिस्ट्रेट ने एक-एक करके उन सबका सरकारी उद्धार करना शुरू किया. उसकी भी बारी आयी. मजिस्ट्रेट ने कहा, "तुम अपने मां-बाप का पता दो. हम तुम्हें वहां भिजवाने की व्यवस्था करेंगे."

उसने उत्तर दिया, "मुझे वहां नहीं जाना है."

"क्यों ?"

"क्योंकि जज साहब आप क़ानून भले ही जानते हो, मेरे मां-बाप को नहीं जानते हैं. उनकी मेहरबानी से ही तो यहां आयी हूं." उसके चेहरे पर कड़वाहट उभरी.

"फिर तुम नारी निकेतन चली जाओ."

"हूं ! वहां भी एक बार गयी थी. बड़ी बेकार जगह है." वह ज़ोर से हंसी और कहा, "वहां काम तो यही लेते हैं पर पैसा नहीं देते हैं. फोकटिये कहीं के."

"तो फिर कहीं भी ऐसी जगह का बताओ जहां लोग तुम्हें आसानी से स्वीकार कर लें."

"वहां जाने देंगे आप."

"हां, हां क्यों नहीं ? तुम कहां जाना चाहती हो ?"

उसका मज़बूत स्वर गूंजा, "वापस कमाठीपुरा अपने अड्डे पर."

उसके इस उत्तर ने यंत्रवत् कार्य करती न्याय व्यवस्था को एकदम चौंका दिया. उसकी साथी देवदासियां भी हड़बड़ा गयीं. सबने अचरज से उसकी ओर देखा. उस वक़्त उसका चेहरा वाक़ई एक मशाल की तरह धधक रहा था.

डी-२०४, संकल्प-II, पिंपरीपाड़ा,
फिल्म सिटी रोड, मालाड (पूर्व), मुंबई-४०००९७.
(मो) : ९८२१२८५१९४

दो लघुकथाएं

तो क्या मैं भी !

मैं गांव से रोज़ शहर आकर कॉलेज में पढ़ाने जाता हूं. गांव शहर के पास है. वहां मैंने आलीशान कोठी खड़ी कर ली है. कार भी ले ली है. मेरे पास डॉक्ट्रेट भी है. अब कई लड़के-लड़कियों का मैं गाइड हूं. मेरी कार में सुंदर लड़कियां अक्सर देखी जाती हैं. कुछ दिनों से मैं अपनी पत्नी को बड़े गौर से देख रहा हूं. ज़िंदगी के बीस साल मेरे जैसे प्रबुद्ध व्यक्ति के साथ बिताने के बाद भी वह पूरी तरह गंवार है. घर में फ्रिज, वाशिंग मशीन, मिक्सी, टी. वी., टू इन वन, सोफ़ा, कालीन और वैक्यूम क्लीनर होने के बावजूद भी वह घर के कामों में व्यस्त रहती है. रात जब बिस्तर पर आती है तो उसके बाल उलझे होते हैं, चेहरे पर हलकी झुर्रियां और साड़ी से मसालों की बू आती रहती है. एक अरुचि से भरकर मेरे बढ़ते हाथ थम जाते हैं. मैं अधिक से अधिक समय शहर में उन लड़कियों के साथ बिताता हूं जिनके पल्लुओं से ख़ुशबू उड़ती है.

उस दिन कॉलेज जाना था. शेव बनाने चला तो बिजली चली गयी. मैं बाहर बारांडे में आ गया और पत्नी से शीशा मांगा. वह एक गोल शीशा थमा गयी. देखने पर महसूस हुआ कि वह पुराना और धुंधला है. पलट कर देखा तो पीछे चमचमाता पॉलिशदार था. उसमें मेरी छवि साफ़ दिखाई दे रही थी. निश्वास के साथ मुंह से निकल पड़ा... तो क्या मैं भी ?

नैनसी

✍ विजय

मैं एक प्राईमरी स्कूल के मास्टर का बेटा हूं. पढ़ाई में तेज़ था. हर क्लास में अव्वल आता गया. एम. ए. करते वक़्त मेरे पिता की मौत हो गयी. मां ने जेवर बेचकर और छोटा सा घर गिरवी रख मेरी पढ़ाई पूरी करायी. मैं आई. एस. में बैठा और चुना गया. विवाह के लिए मेरे रहन रखे घर पर लड़की वालों की कतार लग गयी. मां को घरेलू लड़की चाहिए थी मगर मेरे भी आख़िर कुछ अरमान थे. मैंने एक रईस घराने की सुंदर लड़की को पसंद किया. विवाह में बंगला, कार, जेवर और पैसा सब कुछ मिला. लोगबाग अश अश कर उठे.

नये बंगले में सुहाग सेज लगी. हल्की रोशनी से भरे कमरे में मैंने प्रवेश किया. मेरी पत्नी के कान में मोबाईल लगा था. वह उत्तेजित थी. मोबाईल बंद किया तो मैंने उसे बाहों में भरना चाहा मगर उसने मुझे धकेल दिया, 'फटाफट गाड़ी निकालो. मुझे अभी घर जाना है.'

सकते की हालत में मैंने पूछा, 'क्या पापा या मम्मी की तबियत ख़राब हो गयी.'

'नहीं ! मेरे यहां आने से नैनसी उदास है. सुबह से कुछ नहीं खाया है.'

नैनसी कुतिया का नाम था.

११५ बी, पॉकिट जे एंड के,
दिलशाद गार्डन, दिल्ली-११००९५

कहानी

सरहदें

बड़े भाई जान के साथ रिक्शे से आपा उतरीं. मुहल्ले के अनेक दरवाज़ों पर बड़ी-बूढ़ी औरतें, उम्रदराज़ मर्द और बच्चे-बच्चियों को घूरते देखा. आपा ने गहरी नज़रों से सबको एक नज़र देखा. कुछ चेहरे जाने-पहचाने से लगे. मगर आज नौजवान हो चुके बच्चों को क़तई नहीं पहचान सकीं. ये किन लोगों के बच्चे हैं ? उनके मां-बाप कौन हैं ? जिस घर में वह पलकर बड़ी हुई थीं, उनके आसपास कुछ घर दो मंज़िला इमारत में तब्दील हो चुके थे. कुछ घरों की दीवारें गिर गयी थीं. उन घरों के दरवाज़ों पर टाट के पर्दे झूल रहे थे. जिसके पीछे खड़ी औरतें काफ़ी बदहाल दिख रही थीं. उनके कपड़े बदहाली और आर्थिक तंगी के शानदार नमूने कहे जा सकते थे. उनके बच्चे पोलियो के मरीज़ सरीखे दिख रहे थे. जिस्म पर बच्चों ने पोशाक की जगह चिथड़े लपेट रखे थे या फिर एक दो बटन के सहारे टांग रखा था.

अब यह कहना मुश्किल है कि आपा यानी रेशमा को देखकर मुहल्लेवाले अधिक आश्चर्यचकित थे या फिर स्वयं रेशमा. इस बीच क़ासिम ने रिक्शेवाले को भाड़ा दिया और एक-एक कर सामान उतार कर बरामदे मे रख दिया. उसने चेहरे पर उभर आये पसीने को पोछते हुए बड़ी आपा की ओर देखा. उनकी निगाहें छत की मुंडेर पर टिकी थीं, जहां कई एक जोड़े कबूतर बैठे गर्दने हिला रहे थे जैसे वे भी आपा के स्वागत में वहां मौजूदगी दर्ज कर रहे हों.

"अब अंदर चलें आपा. बहुत देर हो गयी... सब आपका इंतेज़ार कर रहे हैं."

हां, चलो. मैं भी कहां खो गयी ? कितना कुछ बदल गया है यहां. अल्ला जाने किसी पड़ोसवाले ने मुझे पहचाना या नहीं ?"

"कैसे पहचानेंगे ? जब तक उनको बताया नहीं जायेगा. आख़िर तुम बीस सालों के बाद यहां आयी हो. कितना अच्छा होता आपा कि हमारे साथ ज़ाहिद भाई भी आते ? पता नहीं कब भारत-पाकिस्तान के रिश्ते ख़राब हो जायें और सरहद के फाटक बंद हो जायें... कितनी मुश्किलों के बाद तो पाकिस्तान में आपका पासपोर्ट बना ? हमारे मुल्क में ऐसी कोई दिक्कत नहीं? जब चाहो बनवा लो, लेकिन इधर जेहादियों के यहां से जाकर वहां ट्रेनिंग लेने की ख़बरों से सबको थोड़ी जांच पड़ताल में परेशानी होने लगी है..."

"अल्ला, ग़ारत करे इन जेहादियों को ? ख़ुदा जाने ये लोग कौन से इस्लाम मज़हब का पाठ पढ़ते हैं जो अपने ही क़ौम के लोगों का सरे आम ख़ून बहाते फिर रहे हैं... अपने क़ौम की बहू बेटियों के साथ आबरूरेज़ी का काम अंजाम देते फिर रहे हैं... अल्ला...अल्ला...हम किधर जा रहे हैं क़ासिम ? इनको कौन समझाये कि इनकी ग़लतियों की सज़ा आम मुसलमानों को आम ज़िंदगी में किस तरह भुगतनी पड़ रही है चाहे मुसलमान यहां के हों या वहां के ? इससे कहां फ़र्क़ पड़ता है."

यह बतियाते हुए आपा के साथ क़ासिम के घर के बड़े दरवाज़े को पार कर बरामदे मे क़दम रखा. वहां दोनों भाइयों की बीवियां अपने बच्चों के साथ मौजूद मिलीं. सबने एक साथ सलाम अर्ज़ किया. आपा ने उनको जवाब देते हुए पहले भौजाइयों को गले लगाया फिर सोफ़िया, साहिरा, फ़ौज़िया को गले लगाया. जावेद, सैफ और क़मर छोटे थे. उनको बारी-बारी से गोद में उठकर प्यार किया. यह देखकर सबकी आंखें भर आयीं.

आख़िर पूरे बीस साल के बाद रेशमा आपा पाकिस्तान से यहां आयी थीं. वह भी तब जबकि यहां ख़बर आयी. ज़ाहिद भाई यानी बहनोई साहब सख़्त बीमार हुए और आनन-फ़ानन में क़ासिम को बहन के ख़ानदान का हालचाल जानने के लिए पाकिस्तान का रुख करना पड़ा.

डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'

पूरे एक महीने का वीज़ा लेकर वह पाकिस्तान पहुंचे. छोटी बहन ने देखा तो लिपटकर रो पड़ीं. उसकी आंखों में छुपा दर्द का समंदर जैसे उबल पड़ा था. उसके आंसू रुकने का नाम नहीं ले रहे थे, जिसकी तासीर ऐसी थी कि क़ासिम की आंखों से भी गर्म-गर्म आंसुओं का झरना बह उठा.

"हमें तो लगने लगा था कि अब हम कभी नहीं मिल सकेंगे रेशमा ?" मैं भी इसी ख़ौफ़ में जीती रही. फिर भी नमाज़ में मिलने की अल्लाह से दुआएं मांगती रही और अल्लाह ने मेरी दुआ क़बूल कर ली. क़ासिम की बीवी ने दिल की बात कह डाली, "आप लोगों को क्या लगता है. मैं वहां आप सबको याद नहीं करती थी, मगर क्या करती. हुकुमत सहारनपुर आने की किसी को इजाज़त ही नहीं दे रही थी, न मालूम हमारे यहां आने

से हुकूमत को क्या फ़र्क़ पड़ता ? यह मैं आज तक नहीं समझ सकी. वे जो हुकूमत करते हैं. समझदारी भरे फैसले लेते ही कितने हैं ? उनकी एक अलग सोच होती है, जिससे अवाम की ख़्वाहिशात का कोई रिश्ता नहीं होता... वे सिर्फ़ गोला... बारूद... आरडीएक्स... मिसाईल वग़ैरह का रिश्ता ही पसंद करते हैं और उनकी इस सोच के नतीजे के तौर पर कभी शियाओं के मुहल्ले और मस्जिदों में बमों के धमाके होते हैं और गोलियां बरसती हैं... मगर किसे फ़िक्र है कि आख़िरकार मरने वाले मुसलमान ही होते हैं चाहे वे जिस फ़िरक़े के हों, जिस मत के मानने वाले हों ?"

इस गुफ़्तगू के बाद चाय-नाश्ते का दौर चला. सबने इकट्ठे ही खाया-पिया. आपा की गोद में फ़ौज़िया बैठी रही और अपने छोटे-छोटे हाथों से कभी फल तो कभी मिठाई के टुकड़े आपा के मुंह में डालती रही. घर-परिवार की बातें होती रहीं. बातें ख़त्म होने का नाम नहीं ले रही थीं, इसलिए क़ासिम को कहना पड़ा, "आपा अब आप थोड़ी देर आराम कर लीजिए... अभी लंबे सफ़र से लौटी हैं. एक नींद लेना ज़रूरी है आपके लिए ?"

"चलिए बाजी मेरे कमरे में." रेश्मा ने मुड़कर देखा. ठीक उनके सामने सोफ़िया खड़ी थी जो अपने अब्बू के पीछे वाली कुर्सी पर बैठी बातें सुन रही थी.

रेश्मा ने उसके चेहरे को ग़ौर से देखा. वह मुस्कुरा पड़ी. उसके चेहरे की ताज़गी देखकर वह बोली, "क़ासिम इसे किसी की नज़र न लगे, बहुत प्यारी बच्ची है. अल्लाह ने तुम्हें दो बेटियां सोफ़िया, साहिरा और एक बेटा जावेद अता किया है तो कमाल को दो बेटे सैफ़ और क़मर के साथ फ़ौज़िया अता कर हिसाब बराबर कर दिया है. हमारे पाकिस्तान में बच्चों में कोई फ़र्क़ नहीं समझा जाता. बच्चियों को भी पूरी तालीम दी जाती है. उनको भी डॉक्टर और इंजीनियर बनाने का सबके ऊपर जुनून सवार रहता है... कमाने के लिए मुल्क में कोई रोज़गार नहीं मिलता. वे सऊदिया चले जाते हैं... वहां अच्छी पूछ है पाकिस्तानियों की."

"हां. हम लोगों ने भी सुना है कि हिंदुस्तानियों को सऊदिया में मुसलमान नहीं मानते. चूंकि इन्होंने बाद में इस्लाम मज़्हब क़बूल किया." क़ासिम की बीवी ताहिरा बोली.

"अगर किसी से ऐसा सुना है तो बिल्कुल ग़लत है ताहिरा भाभी. हम लोग भी बीस साल पहले ही पाकिस्तान गये तो क्या असली मुसलमान हो गये ? जो ऐसा कहते हैं दरअसल उनका कोई धर्म नहीं होता. वे लोग हमें आपस में लड़वाने की ग़र्ज़ से ऐसा कहते हैं और कोई बात नहीं है."

"कौन कितना मज़हबी है. इसकी पहचान ज़ात से नहीं होगी, बल्कि अल्लाह के घर में ईमान की परख से होगी. यही कसौटी होगी जो सबको पकड़ेगी. कौन कितना सच्चा है. इसकी पहचान करायेगी." रेश्मा ने कहा.

०३ अप्रैल १९६२, ग्राम. धनगाई, बिक्रमगंज, जिला-रोहतास, बिहार; बी.एम.बीएस. (चिकित्सा स्नातक), एम.ए. डिप्लोमा पत्रकारिता एवं जन संचार

लेखन : *कहानी, लघुकथा, कविता, मुस्लिम समाज, धर्म, संस्कृति, चिकित्सा, फिल्म, दूरदर्शन, मनोविज्ञान, पर्यावरण एवं सामयिक विषय.*

कहानियां : *नवनीत, सरिता, मेरी सहेली, समरलोक, कथाबिंब, हरिगंधा, आनंद डाइजेस्ट, केयर, महानगर गार्जियन, अछूते संदर्भ, झंकृति, खनन भारती, वांगमय, अक्षर शिल्पी, लोकयज्ञ, अरावली उद्घोष, लोक गंगा, पंजाब सौरभ, सामान्य जन संदेश, प्रतिश्रुति, रचनाक्रम आदि में कहानियां प्रकाशित.*

प्रसारण : *कहानियों का आकाशवाणी पटना से प्रसारण.*

संपादन *त्रैमासिक हमसफर (मासिक), नई शिक्षा संदर्भ पत्रिका (साप्ताहिक), भारतीय राजनीति और लोकसत्ता, कथा सागर (त्रैमासिक).*

प्रकाशन : *आदमीनामा/१९८५, सिर उठते तिनके/२०००, शब्द इतिहास नहीं रचते/२००३, प्रतिनिधि लघुकथाएं/२००६*

प्रकाश्य : *स्पॉट लाइट/मराठी लघुकथा संग्रह, पत्थर हुए लोग (कहानी संग्रह), ख़ुदा की देन (लघुकथा संग्रह), मुस्लिम समाज के बंद दरवाज़े (आलेख संग्रह), स्त्री नहीं प्रकृति हो तुम (काव्य संकलन), धड़कनें दिल की (ग़ज़ल संकलन), हाशिये का सच (काव्य संग्रह).*

सम्मान : *अखिल भारतीय लघुकथा मंच सम्मान १९९६, परमेश्वर गोयल साहित्य सम्मान २०००, मोहसिन काकोरवी साहित्य पुरस्कार, २०००. दुष्यंत कुमार स्मृती सम्मान २०००.*

स्थापना : *लेखनी प्रकाशन, भारतीय साहित्य सृजन संस्थान/ संजीवनी हेल्थ केयर क्लीनिक.*

संप्रति : *कार्मिक एवं प्रशासनिक सुधार विभाग तथा राजभाषा विभाग, झारखंड सरकार में कार्यरत.*

सबने उसकी बात से इत्तेफ़ाक़ ज़ाहिर किया और अपने-अपने कमरे की ओर चल दिये. रेशमा को यह देखकर बड़ी हैरत हुई कि शादी से पहले वह जिस कमरे में रहा करती थी. उसी कमरे को भाई ने फिर से साफ़-सुथरा करवा कर खुलवा दिया था और सलीक़े से कमरे को सजाया गया था. उसके पलंग के दोनों ओर पहले की तरह गुलाब के गुलदस्ते रखे हुए थे, जिससे भीनी-भीनी ख़ुशबू निकल रही थी. यह उसका ख़्वाबगाह था... जहां बरसों पहले उसने ज़ाहिद के साथ कुछ ख़्वाब बुने थे और ज़िंदगी संवरने के सपने संजाये थे, लेकिन शादी के कुछ दिनों बाद ही शहर में दंगा हुआ.

दोनो समुदाय के लोग आपस मे भिड़ गये और मज़े की बात यह है कि दंगे के काफ़ी अर्से बाद भी यह किसी को समझ में नहीं आया. एक-दूसरे की दुकानें और मकान क्यों जलाये गये ? गाय-भैंसों की तरह इंसानों को क़त्ल क्यों किया गया? गलियों में लाशों के ढ़ेर कैसे लगे ? उन लाशों पर किरोसिन तेल और पेट्रोल किसने डाले ? माचिस की तीलियां किसने सुलगायी ? बस चारों तरफ़ औरतों, मर्दों और बच्चों की चीखें गूंजती रही और तमाशा जारी रहा... कर्फ़्यू की घोषणाएं होती रहीं... पुलिस गश्त करती रही और गलियों... नालियों.. सड़कों में ख़ून बहता रहा.

शहर की कुछ एक गलियों में बसे मुहल्ले दंगे की चपेट में आने से बचे थे, जिसमें ख़ान मिर्ज़ा मुहल्ला भी शामिल था. दंगे का ख़ौफ़ टला. घर के मर्द खाने पर बैठे, किसी ने कहा, "हमें यह मुल्क छोड़ देना चाहिए.., यहां काफ़िर बसते हैं चारों तरफ़... यह कहते फिरते हैं कि जब पाकिस्तान ले लिया, फिर यहां क्या कर रहे हो. तुम्हें अपना मज़हब छोड़ना पड़ेगा, नहीं तो समुद्र मे डुबो देंगे... इससे पहले शुद्धिकरण के लिए तैयार हो जाओ..."

"नहीं यह मैंने कभी किसी आम हिंदू के मुंह से नहीं सुना. पूरी ज़िंदगी गुज़ार दी मैंने... मेरे बाप दादा यही दफ़न हुए, इसलिए मैं भी यहीं दफ़न होना पसंद करूंगा जो लोग ऐसी बातें करते हैं वे कम से कम हिंदू नहीं हो सकते. हिटलर या मुसेलिनी की सोच रखनेवाले लोग हो सकते हैं, जिनसे हमारा कोई वास्ता नहीं. हमें ऐसी बातों पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए." ज़ाहिद की बातों पर तिलमिला कर उसके अब्बू ने कहा.

"फिर प्रत्येक दंगे फ़साद में अधिक से अधिक नुक़सान मुसलमानों को ही क्यों उठना पड़ता है. आख़िर किसी बहाने पहल तो हिंदू ही करते हैं ?" ज़ाहिद ने एक नयी दलील पेश की.

"तुम्हारी ज़हनियत ख़राब हो चुकी है." अब्बू दहाड़े. मैं ठीक कह रहा हूं कि इस मुल्क में अब तक जितने दंगे हुए, इसके लिए ख़ुद मुसलमान जवाबदेह हैं. हां... मैं पूरे होशो हवाश में बोल रहा हूं, जिस दिन इस मुल्क के मुसलमानों को यह सच्चाई समझ में आ जायेगी. सारे के सारे सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक आपसी तनाव ख़त्म हो जायेंगे. हम सबने इस मिट्टी में जन्म लिया है और हमेशा यहीं रहेंगे. हम पाकिस्तान जाने की नहीं सोच सकते. ज़ाहिद के अब्बू ने अंतिम निर्णय सुनाया.

"अब्बू, लेकिन मैं यहां नही रहूंगा... मेरा दम घुटता है यहां के माहौल में. मैं अपनी फैमिली के साथ पाकिस्तान जाऊंगा." यह कहते हुए वह उठ खड़ा हुआ. मगर किसी ने रोका नहीं. मजबूरन, शौहर के साथ रेशमा को सरहदें पार करनी पड़ीं. कुछ रिश्तेदार पहले से ही पाकिस्तान के करांची शहर में आबाद थे. ऐसे लोगों में रिश्ते के एक मामू जान भी थे, जिन्होंने उन दोनों को शुरूआती दिनों में पनाह दी. धीरे-धीरे सब कुछ ठीक हो गया.

शाम जब उसकी नींद खुली तो पांच बज चुके थे. क़मर उसके पैरों की तरफ़ से हिलाकर उठने की कोशिश कर रहा था. यह अनुभव होते ही उछकर बैठ गयी. "अरे मियां, तुम कब आये इधर ?" मैं तो कब से आपको जगा रहा हूं, सब लोग आपका छत पर इंतेज़ार कर रहे हैं चलिए न...?"

"अच्छा बाबा, चलती हूं, ज़रा हाथ-मुंह तो धो लूं." यह कहते हुए रेशमा बाथरूम मे चली गयी.

बरसों बाद रेशमा छत की सीढ़ियां चढ़ रही थी. लोहे की रेलिंग से जुड़े सीकचों पर कसी पायदान की पटरियां चालीस-पचास बरसों के बाद-भी ज्यों की त्यों बरक़रार थीं, उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि आख़िर यह किस किस्म की लकड़ी से बनी हैं जो आज तक ख़राब नहीं हुई.

"आओ, रेशमा यहां बैठें." छोटी भाभी बोलीं. वह उनके बग़ल में बैठ गयी. फिर जाने क्या ख़्याल आया. वह उठ खड़ी हुई और चारदीवारी के एक बग़ल जा खड़ी हुई. "अरे, यहां से बस्ती कैसी दिखाई देती है... अजीब सा दृश्य है यह तो. पहले जहां खपरैल और मिट्टी के मकान थे, वहां दो मंज़िले-तीन मंज़िले मकान बन गये हैं और जहां रईसों की इमारतें और हवेलियां थीं, वहां एकदम खंडहर दिख रहे हैं. यह क्या हो गया भाभी ? उनके घर बर्बाद कैसे हो गये ? कहीं वे लोग भी पाकिस्तान तो नहीं चले गये " "नहीं ऐसी कोई बात नहीं हैं, यदि कुछ है तो बस इतना कि ऊंचे ख़ानदान और शान-ो-शौकत से जीने-वाले अपने बाप-दादा की विरासत नहीं संभाल सके. ज़मीन जायदाद सब कुछ बेच खाया. अब सुबह गरम-गरम चपातियों और गोश्त के शोरवे की बजाये फ़ुटपाथ के होटलों में एक एक कप चाय और एक प्याली निमकी पर सब्र करके जीना सीख गये हैं. जिस तरह तुम ने साड़ी की जगह सलवार क़मीज़ पहनने की आदत सी बना ली है, क्यों ?"

"हां, भाभी वहां औरतें और लड़कियां साड़ी पहनना पसंद नहीं करतीं," रेशमा ने हंसते हुए सफ़ाई पेश की.

"चलो, अच्छा हुआ जो दंगे के बहाने तुम पाकिस्तान चली गयीं ? तुम्हारी ज़िंदगी कितनी ख़ुशहाल दिख रही है," इस बार ताहिरा ने कहा, उसकी नज़रें रेशमा के क़ीमती सूट पर टिकी थीं.

यह सुनकर रेशमा ने उम्रदराज़ दिख रही ताहिरा भाभी के चेहरे पर नज़रें जमाते हुए कहा, "भाभी आप मेरी पोशाक से ख़ुशहाली नाप रही हैं तो मैं स्पष्ट कर दूं कि ख़ुशहाली का पैमाना पूरे समाज के एक समान मिज़ाज और तौर तरीक़े से प्रकट होता है, पहनावा तो दिखावा भी हो सकता है इसलिए मैं तो सोचती हूं कि वे पाकिस्तान नहीं गये होते, हम यहां सचमुच ख़ुशहाल होते न ? कितने रिश्ते-नातों को खो दिया हमने ? आपको क्या मालूम, हम करांची में महाजिर कहे जाते हैं इतने सालों के बाद भी... यानी रिफ़्यूजी, हमें दोयम दर्जे का नागरिक समझते हैं लोग, हमें नौकरियां नहीं देना चाहते... कारोबार में भी ख़तरा बना रहता है कि न जाने मक़ामी लोग कब लूटपाट करने लगें... अचानक वह रुकी."

ताहिरा और ज़ुबैदा उसके चेहरे को पढ़ने की कोशिश करती रहीं, यह देखकर रेशमा बोली, "वहां एक और ख़तरा हमेशा बना रहता है कि न जाने कब कौन पीछे से पीठ में छुरा भौंक दे या गोली मार दे या फिर अपहरण कर ले जाये और कहीं क़त्ल कर दे," यह कहते हुए उसके चेहरे पर दहशत की जैसी रेखाएं खिंचीं, वह देखकर ताहिरा और ज़ुबैदा कांप सी गयीं.

एक पल के लिए वहां गहरी ख़ामोशी सी छा गयी, रेशमा एक बार फिर उस ओर देख रही थी, जहां दूर किसी बस्ती में सूर्य विलीन होता सा प्रतीत होने लगा था, उस जगह पर जो बस्ती थी, वहां शतप्रतिशत मुसलमान आबाद थे, वह कुछ सोचते हुए कहने लगी, "इस मुल्क में मुस्लिम बस्तियों की पहचान उनके दरवाज़ों पर टंगे टाट के परदे, अलमूनियम के बर्तन, बंधने ही बचे हैं क्यों ऐसा ही है न ?"

"औरतें घरों में बच्चे जनने की जंग से जूझ रही हो और कमाई-धमाई न हो तो फिर यही निशानियां ही न दिखेंगी ?"

"इतना ही क्यों ताहिरा ? हम लोग हिंदुओं को काफ़िर कहते हैं, लेकिन आज वे हमें तहज़ीब सिखा रहे हैं, उनके बच्चे पढ़ लिखकर ऊंचे ओहदे पर पहुंच रहे हैं और ख़ानदान का नाम रोशन कर रहे हैं और मुसलमानों के बच्चे अच्छे स्कूलों की बजाय मदरसों में जा रहे हैं, जहां मौलाना भेड़-बकरियों की तरह बच्चों को एक डंडे से हांक रहे हैं, उन्हें जो तालीम दे रहे हैं उसके एवज में वह किसी डाकख़ाने में मनीऑर्डर करने की सलाहियत भी नहीं सीख पा रहा है, फिर वे भला पढ़े लिखे मुसलमानों को क्या मज़हबी तालीम देंगे, ये मदरसे के छोकरे कुछ करें न करें, लेकिन बातें आग लगाने वाली ज़रूर करते हैं... कहीं माइक पर बोलने का मौक़ा मिल जाये तो ज़मीन-आसमान एक कर देंगे... मुसलमानों को मुल्क में मिलजुल कर ज़िंदगी गुज़ारने की सलाह देने की अपेक्षा सदैव तलवार भांजते नज़र आयेंगे और बदला मियां मोल देंगे, इनको कौन समझा सकता है भला ?" ज़ुबैदा ने दिल की बात कह डाली.

"सो तो तुम ने ठीक बातें कहीं, कभी यहां पढ़े-लिखे मुसलमान किसी दंगे के लिए ज़िम्मेदार ठहराये गये हों, जिनको बुद्धिजीवी कहा जाता है, ऐसा तुमने सुना है ? ? नहीं न ? यह दंगे की आग हमेशा जुआरी-शराबी के बीच ही क्यों भड़कती है ? किसी ने समझने की सोचने की ज़हमत की है ? ज़ुबैदा मैं तो कहती हूं कि हम हिंदुस्तान में बेहद सुरक्षित हैं, हमें यहां कोई परेशानी नहीं है, अब रही वहां की बात, वह रेशमा ही बतायेगी, ताहिरा ने रेशमा को कुछ कहने के लिए उकसाया."

उसने अपनी भाभियों के चेहरे देखे और कह उठी, "भाभी मेरी समझ से तथाकथित आतंकवादियों और जेहादियों की बातें नज़र अंदाज़ कर दें, कम से कम इस मुल्क में हिंदु और मुसलमानों के बीच कोई बड़ी खाई नहीं है, भाई जान ही कह रहे थे कि यहां तहज़ीब के मामले में दोनों जातियां इस तरह घुलमिल गयी हैं कि उनकी पहचान को अलग करना मुश्किल है, अब दोनों जातियां शौक़ से एक-दूसरे के घरों में अपने बच्चों की पसंद से शादियां कर रहे हैं, ऐसा वहां तो नहीं है, हमारे बच्चों से कभी क़बाईली अपने बच्चों की शादियां नहीं करेंगे, यह तय है."

"लेकिन तुझे एक बात पता नहीं है रेशमा, चुनाव के वक़्त क्या हुआ था यहां ? तुझे मालूम है ? हमारे मुहल्ले के नुक्कड़ पर न जाने रात के किस पहर अलकतरे के ऊपर किरोसिन तेल के कनस्तर पलट गया था कौन ? जानती हो क्यों ? बस इसलिए, हमारे मुहल्ले के लोग वोट देने नहीं जा सकें."

"क्यों तुम्हारे वोट से कौन सा बवाल होता ?"

"बवाल क्या ? उन्हें लगता है कि हम जिसे वोट देंगे, वह थोक भाव के वोटों से जीतेगा और उसके प्रत्याशी की हार होगी."

"ऐसा सोचने वाले क़ौमी एकता के समर्थक नहीं हो सकते."

"नहीं मैं ऐसा नहीं समझती रेशमा, वे भी क़ौमी एकता के समर्थक हैं, लेकिन ये कुछ लोग वोट किसी शर्त पर हासिल कर कुर्सी हथियाने में यक़ीन करते हैं, यही कारण है कि चुनाव के वक़्त कुछ ऐसे हथकंडे अपनाने से नहीं चूकते, जिनसे उनको ज़्यादा फ़र्क़ पड़े, इसका नतीज़ा यह हुआ कि हमारे घरों से कोई वोट देने नहीं गया ?"

"इससे क्या उन लोगों की मंशा पूरी हो गयी ? जो

मुसलमानों को वोट नहीं देने देना चाहते ?"

"नहीं फिर भी उनका प्रत्याशी हार गया. रेशमा ऐसे ही प्रत्याशियों की बार-बार की हार से बौख़ला कर ये राजनीति को ग़लत बयानी से प्रभावित करने का भरसक प्रयास करते हैं और गोधरा सरीखे कांड अंजाम देते हैं."

"अरे हां, आख़िर यह सब हुआ था कैसे ?" रेशमा के आश्चर्य प्रकट करते हुए जानने की इच्छा प्रकट की.

"यह किसी को नहीं मालूम. वहां की सरकार कहती है कि मुसलमानों ने कारसेवकों की बोगियों को जलाया, जबकि सरकारी रपटें इस इल्ज़ाम को रद्द करती हैं. आख़िर सच क्या है ? इसका अनुमान कोई भी समझदार व्यक्ति लगा सकता है कि जब मुसलमानों ने बोगियों में आग लगायी, फिर क्या उनको यह नहीं मालूम था कि इसके बाद क़त्लेआम का एक नया इतिहास रचा जायेगा. लेकिन यह इतिहास उन्होंने नहीं रचा चूंकि वे हमलावर नहीं थे, बल्कि इसी बहाने उनके घरों, दुकानों और उद्योग धंधे पर जमकर हमले किये गये और उनको बुरी तरह तबाह किया गया. कितनी अजीब बात है कि रेशमा मुसलमानों ने स्टेशन पर बोगियों पर हमले किये और अपने घरों के बचाव के लिए न तो कुछ उपाय किये और न ही सुरक्षा के पुख़्ता इंतेज़ाम कर पाये."

"हूं, मैं भी समझती हूं कि ऐसे इल्ज़ामों से ही इंसान के भीतर जुनून पैदा होता है. वह पढ़ लिख़कर भी हथियारों के खेल में शामिल हो जाता है, फिर तबाही के जो मंज़र सामने आते हैं. इसके लिए एक पूरे समुदाय को उत्तरदायी समझ लिया जाता है और हमारे बीच सरहदें खिंच जाती हैं अनजाने में. जिसके लिए हम क़तई ज़िम्मेदार नहीं होते. क्या ऐसा नहीं हो सकता ? हम ऐसे लोगों की पहचान करें जो अपने गुनाहों की सज़ा दूसरे को भुगतने के लिए विवश करते हैं ? हत्याओं को जायज़ ठहराने के लिए मज़हबी किताबों के हवाले दिये जाते हैं, जो एक-दूसरे के धर्म में ख़ामियां तलाशते हैं. यह किसी को याद नहीं रहता कि दुनिया किसी के लिए स्थायी जगह नहीं है ?"

"एक तेरे सोचने से क्या होगा रे ? यह बातें दुनिया की ठेकेदारी संभालने वालों को समझ में आये तब न ?"

"भाभी, इस दौर में यह बात जितनी जल्द समझ में आ जाये, उतना ही बढ़िया होगा. दंगे-फ़सादों से आप लोगों को कोई नहीं अलग कर सकेगा. मैं देख रही हूं न ? यहां के लोगों का मिज़ाज कैसा है ?" रेशमा पूरे आत्मविश्वास से भरकर बोली. ताहिरा के होठों पर गर्व से मुस्कान थिरक उठी.

"तेरे पाकिस्तान का क्या होगा ?" ज़ुबैदा ने पूछा.

"वह कई टुकड़ों में बंटेगा अभी."

"फिर तू कहां जायेगी ? अब करांची से कहां जाना... आगे का अल्लाह ही हाल जानता है. मैं तो बस सबकी सलामती की दुआएं करती हूं."

"मगर भाभी इतना तय है कि आपके मुल्क में इतना कुछ होने के बावजूद मिल्लत कायम है. आप यहां सबके साथ दशहरे से छठ तक के पर्व-त्यौहारों का मज़ा लेती हैं और मैं वहां इन सब चीज़ों के लिए तरस कर रह जाती हूं. उनके पकवानों की ख़ुशबू आज भी महसूस करती हूं. काश ! यह ख़ुशबू सबके दिलो-दिमाग़ में बस जाये और पूरी दुनिया एक मिज़ाज की हो जाये. इससे अच्छी बात और क्या हो सकती है ? क्यों ठीक कहा न ?"

"अरे ! पगली... तू कहे तो तेरे लिए अनीता, मनोरमा और प्रियंवदा के घरों से आने वाले कुछ पकवान पार्सल से भिजवा दूं..." यह सुनना था कि सबकी सब हंस पड़ी.

अब तक सूर्य लगभग क्षितिज पर लुप्त हो चुका था. किंतु इनके दिलों में एक नये सूर्य का उदय हो रहा था, जिसमें सभी धर्मों और संस्कृतियों के साथ सामाजिक परंपराओं की सुगंध रची-बसी थी और फ़िज़ां में यह सुगंध फैलती जा रही थी... दूर...बहुत दूर तक...

६/२, हारून नगर कालोनी,
फुलवारी शरीफ़, पटना, बिहार-८०१५०५.
मो.: ९४३००६०१५४

ग़ज़ल

भोला पंडित 'प्रणयी'

कुछ सवालों का सही जवाब नहीं होता,
बुज़दिलों की मुट्ठी में इन्क़लाब नहीं होता.

मुफ़लिसी में जिसकी कटी ज़िंदगी,
उसके खाते में कुछ भी हिसाब नहीं होता.

जो श्रम से सजाता अपने दयारे वतन,
वह रहनुमा, दिल का ख़राब नहीं होता.

जो मुक़द्दर के भरोसे बैठता हाथ धर,
उसकी ज़िंदगीनामे में लिखा बाब नहीं होता.

जिसने कुछ न किया उसे बशर क्यों कहें,
काहिलों की ज़िंदगी में शबाब नहीं होता.

सभी यक्ष प्रश्नों का जवाब तो है 'प्रणयी',
क़ब्र में सोनेवालों का कोई ख़्वाब नहीं होता.

सं 'संवदिया' त्रैमासिकी, जयप्रकाश नगर,
वार्ड नं. ७, अररिया (बिहार) ८५४३११

आमने / सामने

अस्तित्व संघर्ष और सामाजिक दायित्व की उपज है लेखन

✍ डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम'

[बहुत बार होता है कि पाठकों से लेखक केवल अपनी रचनाओं के माध्यम से ही बात नहीं करना चाहता बल्कि सीधे पाठक के सामने अपने मन की गांठें खोलना चाहता है. लेखक और पाठक के बीच की दीवार ख़त्म करने का प्रयास है यह स्तंभ, 'आमने/सामने.' अब तक मिथिलेश्वर, बलराम, (स्व.) प्रो. कृष्ण कमलेश, कृष्ण कुमार चंचल, संजीव, (स्व.) सुनील कौशिश, डॉ. बटरोही, राजेश जैन, डॉ. अब्दुल बिस्मिल्लाह, कुंदन सिंह परिहार, अवधेश श्रीवास्तव, श्रीनाथ, राम सुरेश, विजय, विकेश निझावन, नरेंद्र निर्मोही, पुन्नीसिंह, श्याम गोविंद, प्रबोध कुमार गोविल, स्वयं प्रकाश, मणिका मोहिनी, राजकुमार गौतम, डॉ. रमेश उपाध्याय, सिद्धेश, डॉ. हरिमोहन, डॉ. दामोदर खड़से, रमेश नीलकमल, चंद्रमोहन प्रधान, डॉ. अरविंद, (स्व.) सुमन सरीन, डॉ. फूलचंद मानव, मैत्रेयी पुष्पा, तेजेंद्र शर्मा, हरीश पाठक, जितेन ठकुर, अशोक 'अंजुम', राजेंद्र आहुति, आलोक भट्टाचार्य, डॉ. रमसिंह चंदेल, दिनेश चंद्र दुबे, डॉ. कृष्णा अग्निहोत्री, जयनंदन, सत्यप्रकाश, संतोष श्रीवास्तव, उषा भटनागर, प्रमिला वर्मा, डॉ. गिरीश चंद्र श्रीवास्तव, प्रो. मृत्युंजय उपाध्याय, सुधा अरोड़ा, पं. किरण मिश्र, डॉ. तेज सिंह, डॉ. देवेंद्र सिंह, राकेश कुमार सिंह, रमेश कपूर, डॉ. उर्मिला शिरीष, रामनाथ शिवेंद्र, अलका अग्रवाल सिगतिया, संजीव निगम, सूरज प्रकाश, रामदेव सिंह, मंगला रामचंद्रन, प्रकाश श्रीवास्तव, सलाम बिन रज़ाक, मदन मोहन 'उपेंद्र', भोला पंडित 'प्रणयी', महावीर रवांल्टा, गोवर्धन यादव, डॉ. विद्याभूषण, नूर मुहम्मद 'नूर' से आपका आमना-सामना हो चुका है. इस अंक में प्रस्तुत है डॉ. तारिक असलम 'तस्नीम' की आत्मरचना.]

सर्व प्रथम मैं स्पष्ट कर दूं कि मनुष्य की इच्छाएं सर्वोपरि नहीं होतीं और न ही उसकी अवधारणाएं कोई मायने रखती हैं, जब तक उसके विचारों एवं भावनाओं को सामाजिक एवं पारिवारिक स्तर पर मान्यता नहीं मिलती. इसलिए, किसी न किसी रूप में मैं ईश्वर के प्रति आभार व्यक्त करता हूं कि मैं एक व्यक्ति के रूप में धरती पर केवल समय नहीं काटता बल्कि उसकी दुनिया को प्रत्येक स्तर पर बेहतर से बेहतर रूप में देखने के सपनों के साथ जीता हूं. ईश्वर मेरे साथ है और सदैव रहेगा.

जब मैंने होश संभाला तो अब्बू जान ने बताया कि नेहरू जी की मृत्यु के समय तुम बहुत छोटे थे. क्या बतायें. उनकी मौत की ख़बर ज्यों ही कानों में पड़ी, पूरा देश रो पड़ा था. फिर खगोल (दानापुर) से पटना आने के बाद कई एक क़द्दावर नेताओं को बहुत क़रीब से देखने और जानने का अवसर मिला. उन सबकी विचारधारा ने प्रभावित किया लेकिन आज राजनीतिज्ञों की जो वास्तविक स्थिति देखने को मिल रही है, यह चौंकाता कम है, पीड़ादायक अधिक लगता है. गांव में पूरे परिवार के साथ जीवन-यापन करते हुए, मैंने पहली नज़र में गांव के ज़मींदार के प्रति सबको नतमस्तक पाया. देश में पहले मुखिया चुनाव के समय मेरे पूरे ख़ानदान ने अनेकानेक विरोध-प्रतिरोध का सामना करते हुए ज़मींदार को मुखिया पद की जीत में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी. उसका परिवार में आना-जाना शुरू हुआ. परिवार में "मैन पॉवर" को देखते हुए बंधुआ मज़दूरों के समान सबसे काम लेने लगा, जिसके एवज में आर्थिक सहायता देने का सिलसिला शुरू हुआ तो अपने, खेत, बथार, बाग़ीचे और करोड़ों की ज़मीन पेड़ों सहित गिरवी होती चली गयी और आख़िरकार दादा जी के हाथ ख़ाली रह गये.

यों तो पहली बाल कहानी १९७५, फरवरी के बालक में छपी और इस पहली रचना पर सात रुपये पारिश्रमिक मिला, जो उत्साहवर्धन के लिए बहुत बड़ी बात थी. किंतु आत्म तुष्टि का जहां तक प्रश्न है गांव के मुखिया के द्वारा शोषण, दमन और उत्पीड़न का जो अंतहीन सिलसिला भोगने को मिला यही सामाजिक दायित्वबोध का प्रखर कारण बना, जिससे संबंधित दादा जी को ही केंद्र में रखकर "रिसना ख़ून का" लघुकथा 'लघु आघात' त्रैमासिक के दिसंबर, १९८१ अंक में छपी. इस बीच कुछ एक कहानियां भी साप्ताहिक पत्रों एवं लघु पत्रिकाओं में आयीं किंतु मुझे एहसास हुआ कि अपने विचारों, भावनाओं एवं मानसिक पीड़ा उत्पन्न करने वाली वास्तविक घटनाओं को ही साहित्य के लिए "विषयवस्तु" के रूप में प्रयुक्त करना श्रेयष्कर होगा. योंकि साहित्य सृजन में साधनारत रहते हुए पूरे तीस साल गुज़र चुके हैं. छात्र जीवन में ही लेखन के साथ नाट्यकर्मी होने का अवसर भी मिला. तब पटना के विख्यात स्कूल राजा राम मोहन राय सेमिनरी का छात्र होना गर्व की बात थी फिर पटना विश्वविद्यालय में नामांकन पूरे परिवार के लिए सम्मान समझा गया किंतु पाठ्यपुस्तकों के अलावा अन्यान्य पुस्तकों के रूप में दिवाना, लोटपोट से लेकर सारिका, ईरानी क्रांति अंक तक की यात्रा के बीच अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ा. अब्बू जान की चिंता थी कि मैं उच्च शिक्षा प्राप्त कर डिप्टी कलक्टर बनूं या फिर आई. ए. एस. अफ़सर, लेकिन पाठ्य पुस्तकों के बीच सारिका को छुपाकर पढ़ते देखा तो चांटे पड़े. उन्होंने बहुत बुरा-भला कहा. मुझे साहित्य पठन और लेखन से रोकने के लिए गांव से चाचा जी की अगुआई में एक टीम बुलाई गयी. मगर जब उनको सब कुछ अकारथ प्रतीत हुआ, परिवार में भूखों मरने वाला, फक्कड़ रहने

वाला अन्य भाइयों को मुझसे दूरी बनाकर रहने की ताकद की गयी चूंकि मैं उनके विचारों से सहमत नहीं था. मेरे अपनों ने ही मेरे साथ क़साइयों सा सलूक किया, जिस पर मेरी प्रकाशित रचनाओं और प्राप्त पारिश्रमिकों ने मरहम का काम किया.

विश्वविद्यालय की शिक्षा पूरी कर सच्चिदानंद सिन्हा पत्रकारिता एवं जन संचार संस्थान में प्रवेश लेकर पत्रकारिता के क्षेत्र में कैरियर बनाने की सोची. सरकारी सेवा में कभी मेरी रुचि नहीं रही. कथाकार राबिन शॉ पुष्प शिक्षा डाइजेस्ट मासिक पत्रिका के संपादक बने तो उन्होंने मुझे बुलवा भेजा और सहायक संपादक के साथ फिल्म पत्रकारिता की ओर उन्मुख होने की सलाह दी. तभी दैनिक नव भारत टाइम्स में आलोक मेहता जी संपादक बनकर पटना पधारे और फिल्म समीक्षा का दायित्व सौंप दिया. किंतु वास्तव में इस ओर सबसे पहले अवधेश प्रीत ने ध्यानाकर्षित किया था जो एक लंबी बेकारी के बाद भूतपूर्व मुख्यमंत्री जगन्नाथ मिश्रा जी के दैनिक समाचार पत्र पाटलिपुत्रा टाइम्स में उप संपादक राबिन शॉ पुष्प के सहयोग से नियुक्त हुए. बाद में चर्चित पत्रकार विकास कुमार झा भी इस पत्र के संपादक बने और मैंने धुंआधार फिल्म संसार, दूरदर्शन के साथ साहित्य एवं मुस्लिम समाज की रूढ़ियों, प्रथाओं, परंपराओं आदि पर आलेख आदि लिखे. पटना से प्रकाशित आर्यावर्त, प्रदीप, हिंदुस्तान, आज, नवभारत टाइम्स आदि समाचार पत्रों में बरसों यह सब प्रमुखता से प्रकाशित हुआ. दस वर्षों, १९७५-८५ तक आकाशवाणी पटना के कार्यक्रमों से भी संबद्ध रहा और अनेक कार्यक्रमों में सहभागिता बनी रही.

लेकिन भारतीय पत्रकारिता में मुसलमानों के लिए कोई स्थान नहीं है. इसका आभास होने पर ज़बरदस्त झटका लगा, जब आलोक मेहता जी ने स्थायी नियुक्ति की बात चलने पर कहा कि, "यहां के माहौल में कैसे खप पायेंगे ? यहां तो जातिगत जंग पहले से छिड़ी है. मैंने तो अपने विरोधियों से कहा है कि मेरे पास अनेक पूंजीपतियों का संपर्क है. मैं कोई और समाचार पत्र ज्वाइन कर लूंगा. मगर आप तो कहीं के नहीं रहेंगे." और इस कथन के कुछ अर्से बाद ही मेहता जी ने नव भारत टाइम्स छोड़ हिंदुस्तान ज्वाइन किया और मैं भी नयी टीम के आने पर बाहर कर दिया गया. इसी मुद्दे पर तब के हिंदुस्तान दैनिक के संपादक हरिनारायण निगम जी से बात हुई तो उन्होंने भी बिना किसी लागलपेट के स्पष्ट कहा, "आपको ये लोग सहन नहीं करेंगे. बहुत लॉबिंग है यहां ?"

यह मेरे लिए पत्रकारिता से मोह भंग होने का दौर था और आर्थिक बदहाली के दिन भी. परिवार में तानाकशी और निकम्मेपन की दुहाई दी जा रही थी और मुझे बड़ों के कहने को न मानने का दोषी ठहराया जा रहा था. संकट के इस दौर में पूंजीपति घराने के अख़बारों के अलावा राजस्थान पत्रिका, नई दुनिया दैनिक, रांची एक्सप्रेस, सरिता, मुक्ता, गृहशोभा, मनोरमा, गृहलक्ष्मी, मेरी सहेली, नवनीत, रविवार, युगश्री, संडेमेल, संडे ऑब्जर्बर, इंडियन एयर लाइंस की पत्रिका स्वागत, केयर, विज्ञान प्रगति, माधुरी आदि कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं ने पारिश्रमिक भुगतान करते हुए ज़िंदा रहने की उम्मीद को बरक़रार रखा.

दानापुर से बिहारी लाल प्रवीण ने "प्यार जगत" मासिक आरंभ किया तो साथ में सिद्धेश्वर को लाये. उन्होंने ही महान कथाकार जैनेंद्र कुमार के पटना प्रवास के दौरान मिलवाया. उनका आशीर्वाद के रूप में लिया गया साक्षात्कार 'आत्म विश्लेषण' के १९७९ अक्टूबर अंक में छपा.

लेकिन मेरे जीवन की सर्वाधिक दुखदाई घटना थी, शिक्षा काल के दौरान ही नाना जी के दबाव में विवाह होना. जिन लोगों ने कहा था कि विवाह हम कर रहे हैं और आगे के सारे ख़र्च हम वहन करेंगे. कुछ दिनों बाद ही वे लोग पूछने लगे. तुम क्या कर रहे हो ? कहीं नौकरी लगी नहीं, क्यों ? क्या पढ़ाई की है ? सुनते हैं सुबह से शाम तक झोला लटकाये घूमते हो ? यह लेखक-पत्रकार बनकर क्या करोगे ? भूखों ही न मरोगे और अपने परिवार को मारोगे ? कोई काम क्यों नहीं तलाश करते ? एक क्लर्की की परीक्षा भी नहीं पास कर सकते ? बड़े-बड़े लेखकों को देखा है हमने एड़ियां रगड़कर मरते हुए. यह कौन सा रास्ता चुना है ? छोड़ो यह सब ? ये सवाल सारी-सारी रात कानों में गूंजते रहते, सुबह शब्दों में ज़िंदा लाश के सांचे में ढल जाते. पूरा परिवार मेरे विरोध में खड़ा था एक दिवार की तरह और मुझे नाकारा साबित करने की पुरज़ोर कोशिश हो रही थी. लेकिन ये लोग यह मानने को क़तई तैयार नहीं थे कि १९८० में जबकि मैं कॉलेज में था मेरा विवाह करना उनकी भूल थी.

इस पारिवारिक और सामाजिक सोच ने ख़ौफनाक चेहरे का एहसास कराया. मेरे ज़मीर ने पूरे मुस्लिम समाज के "फिल्टर" को उकसाया. तब अपने अस्तित्व-संघर्ष के साथ सामाजिक दायित्व के रूप में मुस्लिम समाज की पड़ताल करने में जुटा. एक नहीं बल्कि अनेकानेक ख़ामियां और ख़राबियां सामने आने लगीं. मुस्लिम समाज को केंद्र में रखकर आलेखों का एक दशक से अधिक समय तक सरिता, मुक्ता के अलावा दैनिक हिंदुस्तान, नवभारत टाइम्स, रांची एक्सप्रेस एवं फीचर सेवाओं के माध्यम से प्रकाशन का सिलसिला चलता रहा. जो आज भी पूरी तीव्रता के साथ जारी है जो महज़ इसलिए नहीं है कि आप मेरा शुमार सलमान रुशादी या तसलीमा नसरीन की श्रेणी में करें. मेरी दृष्टि में वे दोनों ही ग़लत हैं और इनका लेखन शतप्रतिशत समाज के हित में नहीं है. मैं इनके बारे में अधिक कुछ न कहते हुए महज़ यह स्पष्ट करना चाहूंगा कि मुस्लिम बुद्धिजीवी वर्ग को अपनी चुप्पी तोड़नी चाहिए और भारतीय मुस्लिम समाज पर आतंकवाद, मदरसे, जेहाद, कट्टरता, असहिष्णुता

के आरोप को ख़ारिज करने वाले तथ्यों को उजागर करना चाहिए किंतु यह निहायत लज्जाजनक है कि ठीक इसके विपरीत मुल्ला, मौलवी, मुफ़्ती और मुस्लिम नेता आचरण करते दिख रहे हैं.

मेरे लेखन के केंद्र में आज मुस्लिम समाज है तो इसलिए, कि हिंदी साहित्य में मुस्लिम समाज को प्रभावित करने वाले अनेक कारकों को रेखांकित करना चाहता हूं. जिसे आधार मानकर कोई अन्य मुस्लिम लेखक दायित्व निर्वाह के प्रति कतई गंभीर नहीं दिख रहा. अपनी इस मानसिकता के तहत ही १९८० में पहली बार 'हमसफ़र' त्रैमासिक नाम से एक पत्रिका का दो-तीन वर्षों तक संपादन-प्रकाशन किया. १९८१ में मासिक 'नयी शिक्षा' संदर्भ पत्रिका प्रकाशन के साथ देश की चर्चित शैक्षणिक पत्रिकाओं में स्थान बनाने में सफ़ल रही किंतु अपना प्रेस न होने के कारण और बार-बार अंक लेट होने के कारण आर्थिक क्षति को देखते हुए मित्रों एवं सहयोगियों ने हाथ खींच लिया. १९९२ में भारतीय राजनीति एवं लोकसत्ता साप्ताहिक का संपादन भी अपने विचारों के कारण चर्चित हुआ किंतु एक बार फिर आर्थिक कठिनाइयां सामने आयीं तो इसे भी बंद करना पड़ा.

१९९५ में दैनिक नवभारत टाइम्स का प्रकाशन पटना से बंद हुआ तो अनेक पत्रकार सड़कों पर आ गये, जो लॉबिंग करने में सफल रहे वे दिल्ली या मुंबई संस्करण से जुड़ गये. और मैं शिक्षा डाइजेस्ट में कार्य करते हुए अपने दो परम प्रिय मित्रों शंभु 'सुमन' और आलोक रंजन जो आज दिल्ली के प्रकाशन संस्थानों में कार्यरत हैं, के कहने पर राजभाषा विभाग के द्वारपाल को जो आवेदन पत्र भरकर यों ही दिया था जिसके लिए मित्रों ने उकसाया था-लगभग आठ सालों के बाद बिहार लोकसेवा आयोग ने अनुवादकों के पदस्थापन हेतु परीक्षा आयोजित की और मैं यों ही जा बैठा. आज लगता है कि मेरे वे दोनों मित्र देवदूत ही थे जिन्होंने ज़बरदस्ती आवेदन पत्र भरवाया था. जिसकी परीक्षा में मैं उत्तीर्ण हुआ और यकायक सरकारी सेवक बन गया.

यह दुनिया भी कितनी अजीब जगह है, जहां सारे संबंध स्वार्थ से जुड़े प्रतीत होते हैं. मेरा घर और मेरा परिवार जो मुझे काट खाने को दौड़ता था. रात-रात भर सोने नहीं देता था और मैं सारी रात पत्नी के बग़ल में होते हुए रोया करता था. तब तो किसी ने आंसू पोछने की ज़रूरत अनुभव नहीं की किंतु उन सारे आंखों में मेरे लिए असीम प्रेम, अनुराग, श्रद्धा और सम्मान छलछला आया. जब नौकरी का फ़रमान हाथों में मिला. मेरे मुस्लिम समाज और साहित्य के प्रति समर्पण को देखकर अब्बू को लगा कि अब मैं यह सब काम छोड़ दूंगा किंतु वर्ष २००० में 'कथा सागर' के प्रकाशन की योजना पर कार्य करते देखा तो भौंचक रह गये. मेरी अभिव्यक्ति की असीम इच्छा ने मुझे कभी चैन से नहीं रहने दिया.

मेरे लेखन के विषय का जहां तक सवाल है मैंने सदैव अपने आसपास के समाज, परिवार और देश की स्थिति को रेखांकित करने का प्रयास किया है. लेखन में कल्पनाशीलता का घालमेल न्यूनतम स्तर तक ही होना चाहिए. आप तथ्यों के साथ शाब्दिक स्तर पर बलात्कार करके उसे सामाजिक सत्य के रूप में स्थापित नहीं कर सकते. सत्य को उद्घाटित करने में किसी स्तर पर संबंधों एवं भावनाओं को नहीं आड़े आने देना चाहिए. जैसे कि मेरे एक निकटतम मित्र ने परिवार में अपनी, पत्नी, पिता और दूसरे भाइयों की स्थितियों का खुलासा करते हुए जो घटनाएं सुनायीं और पूछा कि क्या इस मुद्दे पर आप कहानी लिख सकते हैं और वह छप सकती है ? मैंने उनको सकारात्मक उत्तर दिया और कुछ दिनों बाद ही सरिता के एक अंक में 'आख़िरी फ़ैसला' शीर्षक से कहानी छप गयी तो इतनी बुरी तरह बौखलाये कि उन्होंने संबंध तोड़ने के साथ मुझे जान से मार डालने की धमकी दे डाली. फिर वह कभी मेरे घर नहीं आये. तात्पर्य यह कि समाज में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं जो आपको परखने के चक्कर में स्वयं ही चपेट में आ जाते हैं. फिर वह न चाहते हुए भी स्वयं किनारा करते हैं.

ऐसे अनेक ख़तरों से मैं परिचित हूं किंतु यदि ख़ुदा को यही मंजूर होगा कि मेरी जान आम आदमी के अधिकारों के लिए लड़ते हुए जाये तो मुझे कोई मलाल नहीं होगा और मैं समझता हूं कि मेरे अस्तित्व को ही सिरे से कभी ख़ारिज करने वाले पारिवारिक लोगों को भी नहीं होना चाहिए जो आज यह कहते हैं कि समाज के प्रति वास्तविक जेहाद तो लेखन है. जेहाद का अर्थ ही होता है प्रत्येक ग़लत विचार के प्रति आवाज़ बुलंद करना.

अपने लेखन की सामाजिक सार्थकता सिद्ध करने के लिए मैं किसी वाद, गुट या खेमे से संबद्धता आवश्यक नहीं समझता, जैसा कि अनेक तथाकथित लेखकों को कहते सुनता हूं कि मैं उस कैंप का लेखक हूं. ऐसे लेखक काफ़ी कंफ्यूज्ड दिखाई देते हैं मुझे. चूंकि वे संपादक के आदेशानुसार लेखन कर रहे हैं. वे अपनी मर्ज़ी से जो कुछ लिखते हैं उसे देश के महान संपादकों को आवश्यकता नहीं होती. मसलन मैंने अपनी एक कहानी वागर्थ के संपादक आदरणीय रवींद्र कालिया जी को भेजी तो उन्होंने अपने पत्र में लिखा - "कहानी अच्छी है, मगर पुराने मूल्यों के प्रति अधिक झुकाव है. नयी पीढ़ी के प्रति असहिष्णु. यह नज़रिया मेरी दृष्टि में दोषपूर्ण है, इसलिए लौटाने पर मजबूर हूं. ग़ौरतलब है कि 'बूढ़ा बरगद' शीर्षक से लिखी गयी उक्त कहानी 'वांग्मय' के जनवरी-मार्च २००५ अंक में छपी. मेरी समझ से एक संपादक का दृष्टिकोण समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त होना चाहिए. लेकिन वास्तविकता यह है कि जो किसी प्रतिष्ठित संस्थान / परिषद / अकादमी के पत्रिका का संपादक बन गया. वह महान हो गया और अपनी महानता सिद्ध करने के लिए कुछ नये फ़रमान जारी कर दिये. इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि लेखकों

का श्रमजीवी वर्ग हाशिये पर चला गया और जो व्यक्ति प्रकाशन संस्थान / उच्च सरकारी पदों / संपादकों के मुंहलेगये बने हुए हैं वे समाज और साहित्य के मसीहा बन बैठे हैं और अपने देवताओं के प्रति मान-सम्मान, श्रद्धा व्यक्त करने के लिए शराब, शबाब और कबाब के चढ़ावे पेश करके गदगद हैं. उन्हें उम्मीद है कि औरों के कांधे पर सवार होकर ये आसमान में छेद करने में सफल होंगे. इसके लिए कभी स्वयं संस्थान के प्रमुख को सम्मानित करते हैं, कभी अपने सम्मान में क़सीदे पढ़वाते हैं. ऐसे नौटंकीबाज़ों से शहर भरा पड़ा है, जिससे मुझे हमेशा एलर्जी रही है."

एक लंबे अर्से से लेखन एवं पत्रकारिता से जुड़े रहने के कारण मैं यह शिद्दत से अनुभव करता हूं कि बहुतेरे संपादक यह मोह पाले हुए हैं कि वह जैसा लिख रहे हैं, आप भी वैसा ही लिखें या फिर जैसा कहते हैं, वैसा लिखकर लायें, वरना पत्रिका में आपके लिए कोई स्थान नहीं है. मैंने देखा है कि एक संपादक दूसरे राज्य के संपादक से अपने चहेते लेखक / लेखिका के लिए लाबिंग के साथ ज़बरदस्त पैरवी भी करते हैं ताकि क़द की ऊंचाई बढ़े. इस विचारधारा के संपादकों के कारण अनेक लेखक हतोत्साहित हुए हैं. ऐसे अनेक लेखक प्रतिदिन पटना पधारते हैं, उनके चहेते सम्मान में न जाने क्या कुछ कहते हैं. ये सूचनाएं मुझे किसी काम की नहीं लगतीं.

उल्लेखनीय है कि गत वर्ष कहानी के वर्तमान परिदृश्य पर सूर्यबाला ने काफ़ी वज़नदार टिप्पणियां की थीं, जिस पर कई वरिष्ठ लेखकों ने गोष्ठी में कुछ कहने से महज इसलिए परहेज़ किया कि महान लेखक बुरा मान जायेंगे. संभवतः यही वह कारण है कि भारतीय हिंदी साहित्य के समक्ष यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ है कि जो कुछ बतौर साहित्य लिखा जा रहा है, उसके पाठक कहां हैं ? चूंकि एक पाठक भी जिन विसंगतियों, विडंबनाओं एवं परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहा है, उसकी वास्तविक छवि साहित्य में कहां दिख रही है ? सार्थक लेखन की परिभाषा ही जैसे गौण हो गयी है. इसकी जवाबदेही तय होनी चाहिए अथवा नहीं ? यह अहम मुद्दा है.

अनेक विदेशी साहित्यकारों के अध्ययन से यह आश्चर्यजनक तथ्य उजागर हुआ है कि विदेशी लेखक और साहित्यकार विचारधारा के स्तर पर वैचारिक कुंठाओं से ग्रसित नहीं हैं, श्लील एवं अश्लील शब्द पर बहसें नहीं करते बल्कि लेखकीय एप्रोच से सिद्ध करते हैं कि कोई शब्द सार्थकता नहीं खोता. यह समझ हम लोगों में अभी अविकसित रूप में विद्यमान है. इसलिए कमोबेश अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाओं के संपादक की मनोदशा मानसिक विकृतियों को उजागर करती प्रतीत होती है. हालांकि यह सत्य है कि किसी लेखक को उन तथ्यों पर लिखकर ही संतुष्टि मिलती है जो वह अपनी आंखों से देखता और कानों से सुनता तथा मानवीय चरित्र के रूप में किसी न किसी रूप में भोगता है.

बहरहाल, भारतीय हिंदी साहित्य में परिवर्तन की हवा वाद एवं खेमे तक ही सीमित होकर रह गयी है, जबकि भारतीय सिनेमा सौ सालों में साहित्य से काफ़ी आगे निकल चुका है, तो क्या सिनेमाई प्रस्तुतियों को अयथार्थवादी कहकर नकार देंगे ? इन मुद्दों पर लेखकों को बहस के लिए आगे आना चाहिए, न कि दोहरे मापदंडों के साथ जीने की कोशिश करनी चाहिए.

इसी संदर्भ में 'व्यंग्य यात्रा' के संपादक प्रेम जनमेजय के अंक-४ में प्रकाशित संपादकीय अंश का उद्धरण अनुचित प्रतीत नहीं होता कि हिंदी साहित्य में अकादमिक कॉल गर्ल्स का रैकेट चल रहा है. बुज़ुर्ग रचनाकारों से दूध के क़र्ज़-रूप में न जाने क्या-क्या वसूला जाता है. अनेक विषकन्याएं हिंदी साहित्य के प्रांगण में रमण कर रही हैं. रंग एवं काव्य मंच के विशेषज्ञ इनकी रग-रग से परिचित हैं. जब हम नेताओं, पुलिस न्यायालय आदि की विसंगतियों पर अपना आक्रोश व्यक्त कर सकते हैं तो साहित्यकारों की विसंगतियों पर क्यों नहीं ?

साहित्य के लिए यह गंभीर संकट का सूचक है. किंतु मुझे संतोष है कि मेरा लेखन साहित्य एवं समाज की चिंताओं के साथ जुड़ा है. यह कितना सही है, यह निर्णय पाठक करते आये हैं और भविष्य में भी यही करेंगे. मैं जिस सामाजिक परिवेश में जीवित हूं, यहां मेरे चारों ओर सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर अनेक विसंगतियां विद्यमान हैं. अनेक प्रकार की कुप्रथाओं, परंपराओं एवं विडंबनाओं से सामना है. जो मेरी विचाराभिव्यक्ति को उद्वेलित करते हैं. मैं तथ्यों से एवं कथ्यों से नज़रें नहीं चुरा सकता इसलिए लेखन के लिए मानसिक रूप से विवश हूं. जबकि मैं यह जानता हूं कि सही दिशा में सक्रिय व्यक्ति की आलोचना के लिए भी कुछ लोग सदैव तैयार रहते हैं जो अपने गिरेबां में झांकने के बजाये औरों के गिरेबां में झांक कर संतुष्ट होते हैं.

अंत में मैं 'कथाबिंब' के प्रधान संपादक एवं पथ प्रदर्शक परमादरणीय डॉ. माधव सक्सेना अरविंद के प्रति भी हार्दिक आभार व्यक्त करना चाहता हूं कि पत्रिका के जन्म काल से जोड़े रखने के अलावा अनेक परामर्श भी देते रहे हैं और बेबाक लहजे में अपनी टिप्पणियों से भी सूचित करते रहे हैं. एक बार उन्होंने लिखा था कि - आपको थोड़ा संयम रखना चाहिए, अभी बहुत आगे जाना है. उनकी यह सलाह मेरे दिलो दिमाग़ में महफ़ूज़ है और इसके अनुपालन के लिए प्रतिबद्ध हूं. आशा करता हूं कि अरविंद जी का स्नेह एवं सहयोग आजीवन मिलता रहेगा. पुनः हार्दिक आभार सहित.

६/२, हारून नगर कालोनी, फुलवारी शरीफ़,
पटना, बिहार-८०१५०५.
मो. ९४३००६०१५४

सागर-सीपी

'मानव जीवन और कहानी एक-दूसरे के पर्याय हैं'

- डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव

(वरिष्ठ कथाकार श्री रमाकांत श्रीवास्तव से 'अविरल मंथन' के संपादक व प्रसिद्ध ग़ज़लकार श्री राजेंद्र वर्मा की बातचीत)

● **आपने कब से लिखना शुरू किया ? पहली कहानी कब लिखी और वह कहां छपी ?**

मेरे संवेदनात्मक उद्गार सबसे पहले कविता के रूप में सन १९३५ में प्रस्फुटित हुए. चूंकि कहानी के प्रति मेरे मन में लगाव था, अतः १९३७ में मैंने पहली कहानी लिखी. उसका शीर्षक था- 'फांसी'. वास्तव में मेरा प्रारंभिक लेखन दिशाहीन-सा रहा. मार्गदर्शन से भी वंचित रहा. 'भारत भारती' और 'जयद्रथ वध' से मुझे कविता के संबंध में दिशा मिली. फिर जब प्रेमचंद की 'क़फ़न' कहानी पढ़ी तो कहानी के विषय में थोड़ा गंभीर हुआ. उनके उपन्यास 'ग़बन' से मुझे कुछ दिशा मिली. 'क़फ़न' ने मुझे जैसे झकझोर डाला. उस समय मैं १४ वर्ष का किशोर था. जहां तक पहली कहानी के प्रकाशन की बात है, वह रचनाकाल (१९३७) के लगभग ६ वर्षों बाद १९४३ में कानपुर से प्रकाशित साप्ताहिक 'रामराज्य' (सं. रामनाथ गुप्त) में छपी. तब तक मैं अपनी कहानी प्रायः मित्रों और साहित्यकारों को सुनाया करता था.

● **तो क्या यह माना जाय कि आपको कहानी लिखने की प्रेरणा प्रेमचंद की 'क़फ़न' से मिली ?**

हां, कुछ हद तक आप कह सकते हैं.

● **आपकी पहली कहानी 'फांसी' की विषयवस्तु क्या थी ? उस समय तो स्वतंत्रता संग्राम अपने उतार पर था ? क्या यह कहानी किसी शहीद के बारे में थी ?**

नहीं, 'फांसी' की विषयवस्तु सामाजिक थी और उसमें यह दिखाया गया था कि किस प्रकार एक निर्दोष व्यक्ति को पुलिस द्वारा खून के अपराध में झूठे फंसाकर फांसी दिला दी गयी.

● **इसका अर्थ यह हुआ कि आपने सामाजिक यथार्थ और न्याय व्यवस्था के खोखलेपन को अपनी पहली कहानी का आधार बनाया. बाद में आपने किस तरह की कहानियां लिखीं ?**

मैं सन १९३९ में सुप्रसिद्ध क्रांतिकारी पं. शिवकुमार मिश्र (संप्रति, कानपुर में) और श्री शेखरनाथ गांगुली के संपर्क में आया था. ये दोनों साम्यवादी विचारों के थे. अतः मैं भी उग्र विचारों वाला क्रांतिकारी साम्यवादी बन गया था. मेरी कहानियां साम्राज्यवादी, सामंतवादी और महाजनी शोषण के विरुद्ध सर्वहारा की आवाज़ बुलंद करने वाली थीं. साथ ही, वय का भी तकाज़ा था. तो, कभी-कभी प्रेम और प्रणय को भी कहानी का विषय बना लिया करता था. इस प्रकार, मिले-जुले विषयों पर मैंने कहानियां लिखीं.

● **और आपका पहला कहानी संग्रह कब छपा ?**

देखिए, मैं कहानी संग्रह छपवाने के प्रति थोड़ा उदासीन रहा. पहली चीज़, मैं पांडुलिपि तैयार करने में लापरवाह रहा, क्योंकि मैं छात्र था और अपनी पढ़ाई पर ही अधिक ध्यान देता रहा. दूसरे, मेरी कहानियां उस समय रायबरेली से प्रकाशित 'नागरिक रक्षा' (सं. डॉ. सच्चिदानंद) के प्रायः सभी अंकों में प्रकाशित होती रहती थीं. यह १९४३-४४ की बात होगी. फिर १९४५ में, मैं जब कानपुर से प्रकाशित 'दैनिक वर्तमान' में उपसंपादक के पद पर नियुक्त हुआ, तो इसके साप्ताहिक परिशिष्ट में मेरी कहानियां सतत छपती रहीं. इस प्रकार मेरी दर्जनों कहानियां उस समय छपीं. लेकिन बाद में, ये कहानियां मेरे यायावरी जीवन के कारण खो गयीं.

● **जब आपने इतनी कहानियां लिखीं और वे छपी भीं, तो उन्हें संग्रह का रूप क्यों नहीं दिया ?**

मैंने बताया न, कि मैं पांडुलिपि तैयार करने में थोड़ा उदासीन रहा. कुछ समयाभाव भी रहा, क्योंकि उस दौरान मैं स्नातक और स्नातकोत्तर कक्षाओं का छात्र था. वैसे भी, आज की भांति, उस समय कोई भी लेखक अपनी रचनाएं पुस्तकाकार छपवाने के लिए अत्यधिक सचेत व सजग नहीं रहता था. वह द्वितीय विश्वयुद्ध का समय था. काग़ज़ पर कंट्रोल था, बल्कि मिलता ही न था. बड़ी दौड़-धूप और चिरौरी-विनती करनी पड़ती थी - राशनिंग विभागवालों की, तब कहीं थोड़ा-सा काग़ज़ मिल पाता था. सन १९४५ में मैंने अपना कहानी-संग्रह छपवाने का मन बनाया, लेकिन काग़ज़ की समस्या सामने आ गयी. मैं राशनिंग विभाग के चक्कर नहीं लगा सका. दूसरे मेरे सामने अर्थाभाव भी था, सो स्वयं कोई संग्रह छपवा नहीं सकता था. प्रकाशक, मुझ जैसे नये कहानीकार का संग्रह छापना नहीं चाहते थे.

● **तो, फिर आपका पहला कहानी संग्रह कब छपा ? उसका शीर्षक क्या था और उसमें किस प्रकार की कहानियां थीं ?**

यह अजीब-सा है कि मैंने कहानियां लिखनी शुरू कीं १९३७ से, लेकिन मेरा कहानी-संग्रह १९८० में आ सका. यानी ४३ वर्षों बाद. शीर्षक था - 'रोटी की तलाश'. इसमें राजनैतिक और सामाजिक दुष्परिणामों का चित्रण तथा एक मार्ग तलाशने की कोशिश थी.

● **इस विलंब के पीछे क्या कारण थे. कहीं ऐसा तो नहीं कि आप स्वयं अपनी कहानियों से संतुष्ट न हों, या कुछ महत्वपूर्ण कहानियां खो गयी थीं, जैसा कि आपने पहले कहा !**

वास्तव में आज़ादी के बाद जो विकास शुरू हुआ, उससे सामंती व्यवस्था चरमरायी और ग्राम्यांचल की प्राकृतिक सुषमा में विकृति आने लगी. ग़रीब, अधिक ग़रीब और अमीर, अधिक अमीर बनने लगे. तालाब पटने लगे, अमराइयां कटने लगीं. ऊसर ज़रूर सुधरने लगे, पर चारागाह भी सिमटने लगे. बढ़ती आबादी के लिए घर और अन्न उपजाने के लिए अधिकाधिक ज़मीन चाहिए थी. नेहरू जी ने तो गमलों में भी गेहूं उगाने की सलाह दी थी. भूमिहीनों को भूमि, भुखमरों को रोटी, पशुवत जीवन जीने वालों की अस्मिता-रक्षा, मानव मूल्यों की स्थापना, मजदूरों की व्यथा-कथा और उनके अधिकारों की रक्षा, आदि विषयों को लेकर कहानियां लिखीं.

● **अब तब आपके कितने कहानी-संग्रह आये ?**

'रोटी की तलाश' के बाद मेरा दूसरा संग्रह 'राह की तलाश' आने को है.

● **आपके संपादित कहानी-संग्रह ?**

वर्माजी, जैसा मैंने बताया, मैं तो १९४४ से संपादन से जुड़ा हूं और अब तक जुड़ा चला आ रहा हूं. इस दीर्घावधि में मैंने दैनिक, साप्ताहिक, मासिक तथा त्रैमासिक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन किया है जिनमें अधिकतर कहानियां छपती रही हैं. इन कहानियों का संपादन मैंने ही किया है. इनके लेखक कालांतर में सिद्ध-प्रसिद्ध कहानीकार बने. इनमें कमलेश्वर विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं. इनकी पहली कहानी से लेकर पंद्रह कहानियां मैंने अपने संपादन में कानपुर से प्रकाशित 'साप्ताहिक जयभारत' में वर्ष १९४९-५१ में प्रकाशित की थीं.

● **क्या ऐसे सिद्ध-प्रसिद्ध लेखक कभी आपको याद करते हैं?**

वैसे तो जब कभी मुलाकात हो जाती है, तो ये सिद्ध कहानीकार कह दिया करते हैं कि आपने मेरी कहानियां छापी थीं, पर एक मात्र कमलेश्वर ही ऐसे स्थापित कहानीकार थे जो प्रायः मेरे पास पत्र भेजकर अपने को सिद्ध कहानीकार बनाने का श्रेय मुझे दिया करते थे.

● **क्या उनके पत्र आपके पास सुरक्षित हैं ?**

बहुत से इधर-उधर हो गये, परंतु एक पत्र जो उनकी हस्तलिपि में है, अब भी मेरे पास सुरक्षित है. इसे उन्होंने २००३ में मेरे पास तब भेजा था, जब मैंने अपने निबंध संग्रह 'चाह भरी लहरों का उपकूल' की प्रति उनके पास भेजी थी. उस संग्रह की प्राप्ति की सूचना देने में अपनी सिद्धि-प्रसिद्धि का श्रेय देना भी नहीं भूले थे.

१५ जुलाई, १८२१;
कैथन का पुरवा, लालगंज, रायबरेली (उ. प्र.)

पत्रकारिता/ संपादन :

दैनिक वर्तमान, कानपुर में उपसंपादक; दैनिक वीर भारत, कानपुर में समाचार संपादक; साप्ताहिक जयभारत, कानपुर में प्रधान संपादक; मासिक श्रमजीवी (श्रमायुक्त कार्यालय, कानपुर) में १४ वर्ष पर्यंत संपादक; हिंदी समिति/उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान में १४ वर्ष पर्यंत प्रधान संपादक; साप्ताहिक स्वतंत्र भारत सुमन, पायनियर प्रेस, लखनऊ में साहित्य संपादक; मासिक गरिमा भारती, लखनऊ में संयुक्त संपादक; मासिक सानुबंध, लखनऊ में कार्यकारी संपादक; भारतीय उद्देश्य, लखनऊ में प्रधान संपादक; संप्रति अनियतकालीन 'भारतीय मनीषा' का संपादन.

प्रकाशन :

१९४१-२००६ तक विभिन्न विधाओं में २१ पुस्तकें प्रकाशित; इनके अतिरिक्त हिंदी समिति एवं उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान में प्रधान संपादक के रूप में १६० से अधिक संदर्भ और मानक ग्रंथों का संपादन.

विशेष :

लखनऊ विश्वविद्यालय के हिंदी एवं भारतीय भाषा विभाग द्वारा व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एम. फिल. हेतु शोध प्रबंध स्वीकृत; कला भारती संस्थान, बस्ती द्वारा 'हिंदी के समर्पित साधक रमाकांत श्रीवास्तव' पुस्तक का प्रकाशन, जिसका संपादन सांसद श्री नरेशचंद्र चतुर्वेदी ने किया; फ़िरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली द्वारा व्यक्तित्व एवं साहित्य पर शोध स्वीकृत; लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा जीवन और साहित्य पर पी-एच.डी., हेतु शोध; भागलपुर विश्वविद्यालय द्वारा जीवन और साहित्य पर पी-एच.डी. हेतु शोध.

स्वतंत्रता सेनानी के रूप में भूमिका :

१९३० के नमक सत्याग्रह में ९ वर्ष की वय में भागीदारी; २६ जनवरी, १९४० को नेताजी सुभाष चंद्र बोस के उन्नाव आगमन पर कमला मैदान में उनकी सभा का आयोजन एवं उसकी अध्यक्षता; भारत छोड़ो आंदोलन में सक्रिय योगदान, जेलयात्रा, उन्नाव जेल के बैरक नं. ६० में बंदी.

अनेकानेक सम्मान व पुरस्कार प्राप्त.

● **कमलेश्वर तो समांतर कहानी आंदोलन के सूत्रधार थे. क्या आप उस आंदोलन से जुड़े ? आपकी दृष्टि में इस प्रकार के आंदोलनों से कहानी का क्या लाभ हुआ ?**

मैं किसी भी आंदोलन से नहीं जुड़ सका. इनमें मेरी रुचि तनिक भी नहीं रही. ये कहानीकारों के खेमे थे, उनके अपने गुट थे. मैं तो स्वतंत्र रहकर अकेला ही चला हूं. मेरी प्रतिबद्धता पूरे समाज के प्रति रही, किसी आंदोलन के प्रति नहीं, किसी गुट के प्रति नहीं.

● **लेकिन आंदोलनों से कहानी-लेखन को गति तो मिली. कमलेश्वर के अलावा भी तो लोगों ने आंदोलन चलाये - मसलन, अकहानी, अचेतन, सचेतन कहानी, नयी कहानी, जनवादी कहानी आदि. आपकी दृष्टि में सभी आंदोलन व्यर्थ थे ?**

मैं यह तो नहीं कहता कि कोई आंदोलन व्यर्थ होता है, लेकिन मुझे लगता है कि किसी आंदोलन से जुड़ने का अर्थ है - प्रतिबद्ध लेखन, एजेंडावादी लेखन. यों तो अच्छा कहानीकार युगीन यथार्थ के कथ्य से जुड़ी कहानी लिखता है. अगर आप उसे 'समांतर, अकहानी, अचेतन, सचेतन, विचार, सहज, शुद्ध, सक्रिय, जनवादी' अथवा 'नयी कहानी' कह देंगे, तो क्या वह कहानी न रह जायेगी ? कुछ और हो जायेगी ? नहीं, वह कहानी ही रहेगी. कहानी सदैव अच्छे शिल्प और नवीन कथ्य से अच्छी बनती है. यदि किसी लेखक को अपनी स्वतंत्रता प्यारी है, तो वह कैसे किसी खेमे या गुट में रह सकता है ? यह सब अपने को चर्चित या स्थापित करने के बहाने हैं. मैं इनमें विश्वास नहीं रखता.

● **आज हालांकि कोई आंदोलन नहीं चल रहा है और कहानी अपने स्वाभाविक फॉर्म में है, फिर भी राजेंद्र यादव अपने 'हंस' के ज़रिये स्त्री और दलित को केंद्र बिंदु बनाकर कहानियां लिखने-लिखाने का उपक्रम कर रहे हैं. इससे आप कहां तक सहमत हैं ?**

देखिए, स्त्री या दलित-विमर्श को लेकर रचनाएं करना अच्छी बात है, लेकिन कई लोगों की यह धारणा कि स्त्री या दलित की पीड़ा-संवेदना कोई स्त्री या दलित ही व्यक्त कर सकता है, बिल्कुल सनक भरी है. ज़रूरी नहीं कि जो भोगता है, वह लिख भी सकता है.

प्रेमचंद तो दलित नहीं थे, फिर 'कफ़न', 'ठकुर का कुआ', 'सद्गति' आदि कहानियों के द्वारा जो पीड़ा, संवेदना दलितों के प्रति व्यक्त की है, वह क्या आज के दलित-लेखक कर रहे हैं ? लेखक, लेखक होता है, दलित-गैरदलित नहीं !

● **लेकिन दलित-लेखन के पैरोकार 'सहानुभूति बनाम स्वानुभूति' की बात उठते हैं ? इसको लेकर आप क्या कहेंगे ? वे कहते हैं कि प्रेमचंद हों या कोई अन्य जो भी गैर-दलित लेखक हैं, उन्होंने केवल सहानुभूति दिखायी है. कोई भी सवर्ण लेखक दलित की पीड़ा नहीं समझ सकता ! इसी प्रकार स्त्री की पीड़ा कोई स्त्री ही समझ सकती है.**

यह सब बकवास है. मैंने पहले कहा कि लेखक दलित या गैर-दलित नही होता है. वह सिर्फ़ लेखक होता है. इसी प्रकार स्त्री की पीड़ा भले ही स्त्री समझ सकती हो, लेकिन ज़रूरी तो नहीं वह उसे कहानी या अन्य विधा मे कलात्मक रूप से व्यक्त भी कर सके.

● **कहानी के आज के स्वरूप और उसकी आवश्यकता पर कुछ प्रकाश डालेंगे ?**

कहानी और मानवीय जीवन एक-दूसरे के पर्याय हैं. बच्चे, दादी-नानी से कहानियां सुनते चले आ रहे हैं. उनके चेतन और अवचेतन मे कहानी का आस्वाद रच-बस जाता है. बड़े होने पर हर वय में यही आस्वाद उन्हें कहानियां पढ़ने को प्रेरित करता रहता है. यही कारण है कि बाल पत्रिकाओं में बाल-कहानियां और अन्य साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रौढ़ कहानियां छपती आ रही हैं. यह क्रम जारी रहेगा. कभी इस पर विराम नहीं लगेगा. कारण कहानी मनोरंजक भी होती है और उद्देश्यपरक भी. वह कविता की भांति सुनी भी और पढ़ी भी जाती है. आप देखिए, लोककथाएं भी मानव-समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं. कहने का तात्पर्य है कि कहानी एक अपरिहार्य मानसिक आवश्यकता है. उसके बिना मनुष्य जीवन नीरस, प्रेरणाविहीन और पशुवत् हो जायेगा.

● **आप कहानीकार तथा लघुकथाकार भी हैं. लघुकथाएं कब से लिखनी शुरू कीं ? कहानी और लघुकथा में मूलभूत क्या अंतर हैं ? लघुकथा आंदोलन भी चले, उसमें आपकी भागीदारी?**

लघुकथा-लेखन मैं १९८० से कर रहा हूं. इसके आंदोलनों में भी मैं रुचि लेता आ रहा हूं. मेरी लघुकथाएं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं. मेरी लघुकथाओं का संग्रह 'बसेरा' प्रकाशित है जिसमें ५० लघुकथाएं संग्रहीत हैं. अपने मासिक पत्र- 'भारतीय उद्देश्य' में मैंने स्वयं दूसरों की लघुकथाएं प्रकाशित की हैं. इसके अलावा मासिक 'गरिमा-भारती', मासिक 'सानुबंध' तथा अनियतकालीन 'भारतीय मनीषा' के संपादन में मैंने लघुकथाओं को स्थान दिया है. 'सानुबंध' के तो दो लघुकथा विशेषांक भी मैंने संपादित किये हैं. इसमें देशभर के लघुकथाकारों की लघुकथाएं संग्रहीत हैं. जहां तक लघुकथा और कहानी में अंतर की बात है, तो लघुकथा अपनी संकेंद्रित संवेदना की सांद्रता के कारण कहानी से पृथक स्वतंत्र विधा है. यह कहानी की उपविधा नहीं है. यह किसी संवेद्य सद्विचार की संक्षिप्ततम एवं सौद्देश्यपरक कथात्मक अभिव्यक्ति है. इसमें संश्लेषणात्मकता का प्राधान्य और विश्लेषणात्मकता से परहेज़ रहता है. समाज में व्याप्त विरोधाभासों, विसंगतियों, विषमताओं,

अहमन्यताजन्य दूरियों आदि के कारण जीवन प्रायः कठिन हो जाता है. इन सबसे जुड़े यथार्थ की भूमि में किसी क्षण विशेष की संवेदना से अभिसिंचित होकर लघुकथा का अंकुरण होता है. जबकि कहानी इसके विपरीत विस्तार की मांग करती है. कहानी में किसी घटना विशेष पर मानवीय अंतर्द्वंद्व का रेखांकन रहता है. ...और उपन्यास में तो और भी विस्तार की मांग होती है क्योंकि उसमें जीवन के विभिन्न पहलुओं का विश्लेषण रहता है.

● **आज जो कहानियां लिखी जा रही हैं, उनकी विषयवस्तु और शिल्प से क्या आप संतुष्ट हैं ? कहानी का भविष्य क्या है और उसके सम्मुख कौन-सी प्रमुख चुनौतियां हैं ?**

कहानी का भविष्य उज्ज्वल है, बहुत उज्ज्वल है. मैं पहले भी कह चुका हूं कि मानव जीवन और कहानी एक-दूसरे के पर्याय हैं. यदि मनुष्य के जीवन का कोई भविष्य है, तो कहानी का भी भविष्य है. कहानी की यात्रा ज़ारी रहेगी. वह समाज की बदलती स्थितियों के प्रति जागरूक है. समाज में जब तक सांप्रदायिकता, धर्मांधता, पूंजीवाद, बेरोज़गारी, आतंकवाद, अपसंस्कृति, बाज़ारवाद, उपभोक्तावाद, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, एकाकीपन, व्यक्तिनिष्ठता, मूल्यहीनता, जनसंख्या विस्फोट, पर्यावरण-प्रदूषण, हताशा-निराशा, विसंगति-असंगति विद्यमान हैं, कहानी इन्हें अनदेखा नहीं कर सकती. इसलिए, कहानी में इनसे जुड़े कथानकों और विश्लेषणों की प्रमुखता होनी चाहिए. संवेदना और मार्मिकता से संपृक्त होने की चुनौती कहानी के सम्मुख सदैव रही है, आज भी है. यही कहानी का सच है. इस सच के प्रति कहानीकारों को सतर्क रहकर रचनात्मकता को चुनौती के रूप में स्वीकार करने की आवश्यकता है.

● **आपकी पसंदीदा कहानियां कौन-सी हैं ? और वे क्यों पसंद हैं ?**

मुझे ग्राम्यांचलिक पृष्ठभूमि की कहानियां अधिक पसंद हैं, क्योंकि मैं स्वयं गांव का हूं, वहीं जन्मा, बड़ा हुआ और आज भी गांव से जुड़ा हूं. मैं स्वयं ऐसी ही कहानियां लिखता भी हूं. इस दृष्टि से मेरे प्रिय कहानीकार प्रेमचंद हैं. उनकी वैसे तो ३०० से अधिक कहानियां हैं, लेकिन उनमें 'क़फ़न', 'पूस की रात', 'ठकुर का कुंआ', 'ईदगाह', 'नमक का दारोगा', 'सवा सेर गेहूं', 'बेटी का धन', 'सफ़ेद ख़ून', 'बड़े घर की बेटी', 'अमावस्या की रात' आदि कहानियां मुझे बहुत पसंद हैं. प्रेमचंद की कहानियों के अलावा, फणीश्वर नाथ 'रेणु', शिवप्रसाद सिंह, शिवमूर्ति की कहानियां भी अच्छी लगती हैं.

● **अगर किसी एक लेखक और उसकी एक कहानी की बात की जाय तो ?**

प्रेमचंद की 'क़फ़न', जैसा मैंने कहा इससे प्रभावित और प्रेरित हुआ हूं. इसमें ग़रीबी के प्रभाव का अत्यंत नग्न यथार्थ रूपायित किया गया है. आप देखिए, अतिशत ग़रीबी और भुखमरी मनुष्य की सोच को कितना विकृत कर देती है. वह कितना अमानवीय हो जाता है. इस कहानी का प्रभाव पाठक के मन पर बहुत गहरे पड़ता है. वह संवेदित भी होता है और स्तंभित भी. हालांकि कुछ लोग इसे अतिशयोक्ति या अतिरंजना मानते हैं और इस पर अस्वाभाविकता का दोष लगाते हैं. पर मैं इसके पक्ष में नहीं हूं. यह कहानी अपनी शिल्पगत और कथ्य की प्रभावांवति के कारण मेरे स्मृति पटल पर आज भी अंकित है. इसलिए मैं इसे सफल कहानी का दर्जा देता हूं.

● **एक अंतिम प्रश्न - आपकी दृष्टि में सफल कहानीकार कौन से हैं ?**

देखिए, सफल कहानीकारों की सूची तो बहुत लंबी है. हां, यदि इसे १०० वर्षों की विकास अवधि (कहानी के जन्म से अब तक) में चार भागों में विभक्त किया जाय, तो यह कहा जा सकता है कि प्रथम चरण में राधाचरण गोस्वामी, किशोरी लाल गोस्वामी, बंग महिला, केशव प्रसाद सिंह, कार्तिक प्रसाद खत्री, गिरीजादत्त बाजपेई, यशोदानंदन अखौरी, सूर्यनारायण दीक्षित, पार्वतीनंदन, गंगा प्रसाद अग्निहोत्री आदि आते हैं. दूसरे चरण में प्रेमचंद, 'गुलेरी', 'कौशिक', जयशंकर 'प्रसाद', निराला, चतुरसेन शास्त्री, 'उग्र', जैनेंद्र कुमार शिखर पर हैं. तीसरे चरण में भगवती प्रसाद, बाजपेई, सुदर्शन, राजा राधिका रमण प्रसाद सिंह, उषा देवी, यशपाल, भगवतीचरण वर्मा, अमृतलाल नागर, इलाचंद जोशी, 'अश्क', 'अज्ञेय', वृंदावन लाल वर्मा, रामकृष्णदास, शिवपूजन सहाय, फणीश्वरनाथ रेणु, मन्मथनाथ गुप्त, देवीदयाल चतुर्वेदी, कमलादेवी चौधरी आदि को रखा जा सकता है. चतुर्थ चरण में सत्यजीवन वर्मा 'भारतीय', अमृत राय, बलवंत सिंह, कृष्ण बलदेव वैद, विष्णु प्रभाकर, धर्मवीर भारती, राजेंद्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म सहानी, ज्ञानरंजन, मन्नू भंडारी, निर्मल वर्मा, नरेश मेहता, कमल जोशी, अमरकांत, रवींद्र कालिया, ममता कालिया, शिवानी, उषा प्रियंवदा, रमेश बक्षी आदि माने जायेंगे. इनके अतिरिक्त आज के कहानीकारों में जनार्दन प्रसाद द्विवेदी, उदयराज सिंह, स्वदेश भारती, रमाकांत श्रीवास्तव, कौशलेंद्र पांडेय, अनिरुद्ध प्रसाद विमल, आभा पूर्वे, योगीद्र द्विवेदी, अखिलेश, शिवमूर्ति, कृष्ण बिहारी, संजीव, उदय प्रकाश, स्वयं प्रकाश, संजय, राजेंद्र वर्मा, परमेश्वर गोयल, शंकर सुल्तानपुरी, लक्ष्मी प्रसाद विमल, रामयतन प्रव्यादव, रेखा व्यास, रूबी भूषण, विजय, डॉ. सतीश भाटिया, सुधा अरोड़ा, रमेश उपाध्याय, बलराम, डॉ. देवेंद्र सिंह, डॉ. निरुपमा राय, राजेंद्र परदेसी, केशव प्रसाद वर्मा, अमरेंद्र, सलाम बिन रज़ाक, डॉ. रूपसिंह चंदेल, डॉ. उषा चौधरी, सूरजप्रकाश, डॉ. अरविंद आदि सफल कहानी-लेखक हैं. आज

(कृपया शेष भाग पृष्ठ-५० पर देखें)

वातायन

यथार्थ से तादात्म

कैलाश बिहारी श्रीवास्तव

पृथ्वी पर सृष्टि द्वारा नर और नारी की केवल दो ही जातियों की प्रारंभ में रचना की गयी थी. इन दोनों के संसर्ग शारीरिक मानसिक संवेग से जाति, उपजाति और प्रजाति की उत्पत्ति हुई, जो पूर्णतः मानव निर्मित कही जा सकती है.

इन दो भिन्न शारीरिक, मानसिक आकार प्रकार से संपूर्ण मानव समाज, नर और मादा, शोषक और शोषित वर्ग में बंट गया. जिसने अपनी अपनी भौगोलिक सामाजिक संचालित विशिष्टतानुसार भगवान के अस्तित्व की व्याख्या करना शुरू कर दिया. इनमें से कुछ चतुर बुद्धिमान लोगों ने अपने अपने धर्म कर्म के नियम क़ानून बना डाले, जिसे जीवन की अनिवार्यता घोषित कर दिया गया. यह अनिवार्यता ही धर्मानुरागियों की बाद में जीवन शैली बन गयी. इन धर्मानुयायियों (नर) ने, जन्म देने वाली जननी-स्वामिनी की प्राकृतिक शारीरिक विशिष्टता को नारी दौर्बल्य मानकर, नारी पर नर का वर्चस्व और स्वामित्व मान लिया और रूप आकार को भोग का पर्याय मान लिया, जो धीरे-धीरे सामाजिक अनैतिकता का स्थान ले बैठा और आदमी का प्रथम शोषण का आधार बन गया. नारी भी अपनी जनन शक्ति को दर किनार कर अपने को पुरुषोचित, पुरुष बल पर आश्रित कर बैठी. परिणाम यह हुआ कि विश्व भर में नारी उत्पीड़न का पुरुष साहस बढ़ गया और आदमी की शोषण करने की आदत, समाज के अन्य पक्षों का भी स्पर्श कर अतिक्रमणकारी बन गयी. आदमी में स्वेच्छाचार, एकाधिकार, के अप्रिय असहनीय तत्वों की वृद्धि हो गयी. धर्म को पुरुष वर्ग ने अपनी इन प्रवृत्तियों का आवरण बना दिया जिससे शोषित वर्ग (मादा) पुरुषों में कमज़ोर बुद्धि, कमज़ोर शारीरिक मानसिक ऊर्जा वाले, उनका प्रतिरोध न कर सकें, सहन करें. जब इन प्रवृत्तियों की अति हो गयी, तो कई प्रकार के आंदोलन और उपद्रव होने लगे जो आज भी होते रहते हैं.

धर्म में जितने भी परिवर्तन आज तक हुए हैं, या होंगे, उनका आधार सदा, धर्मांधता से उत्पन्न कठोर रूढ़ियां और कुछ लोगों की स्वार्थांधता ही कारण है और दैवी शक्ति के प्रकोप की बात कर निहितार्थ पूर्ति का ही अपरोक्ष स्थान मुख्य था. कभी सर्वमान्य एकरूपता नहीं थी. सदा ईश्वर, भगवान, खुदा, गॉड के अस्तित्व की, उसकी अदृश्यता और दैवी शक्ति के प्रकोप और क्षमा शक्ति का धर्मग्रंथों और धर्माचार्यों ने अपने-अपने से आंकलन किया, जो लोगों की आस्था बन गया. कम पढ़े लिखे सीधे, सादे, लोगों ने इस तथ्य का विवेकपरक आंकलन ही नहीं किया. मुस्लिम समाज में अशिक्षा ही धर्मांधता का कारण है. हिंदुओं में भी आस्था का स्थान विवेकहीनता पैदा करता है.

लेखक को इस चिंतन मनन के दौरान तीन पुस्तकें पढ़ने को मिलीं, जिसके आधार पर उक्त विचार दिये गये हैं.

१. 'वैचारिक उद्‌बोध', अखिल भारतीय वैचारिक क्रांति मंच, लखनऊ द्वारा प्रकाशित.

२. 'जीवन में गीता ज्ञान का महत्व', पुष्पी ऑफसेट, बाई का बाग, इलाहाबाद.

३. 'ईशावास्योनिषद-रहस्य' (संस्करण-२००५) वैदिक आध्यात्म चेतना मिशन, पिपराली रोड, सीकर (राज.).

प्रथम पुस्तक में समय समय पर आवश्यकतानुसार हर समाज और व्यक्ति के वैचारिक परिवर्तन एवं क्रांति की आवश्यकता प्रतिपादित की गयी है. दूसरी पुस्तक में गीता के मंत्रों के मौलिक आशय का, मानव जीवन में उसके यथार्थपरक प्रयोग का सहज उद्‌घाटन किया गया है. तीसरी पुस्तक में अधिक तार्किक ढंग से आदिकालीन अनेक मंत्रों की व्याख्या की गयी है, जो सहज में ही संपूर्ण मानवता के लिए हितकारी है. इसमें धर्म, जाती और संप्रदाय को महत्वहीन रखा गया है.

लेखक की विहंगम दृष्टि अन्य धर्मग्रंथों पर भी पड़ी थी. तथा उनके प्रवचनों को भी यदा कदा सुना था और निष्कर्ष में पाया कि सबने विवेचना को ईश्वर, भगवान, गॉड, खुदा के रूप, दैवी शक्ति तक ही केंद्रित रखा. अधिकतर धर्मों ने जो नियम-क़ानून और कमान्डेन्ट बनाये, उन्हें सामाजिक प्रतिबंध का ही रूप दिया, जबकि वैदिक धर्म ग्रंथों ने सामाजिकता के साथ ही, जीवन दर्शन की भी व्याख्या की थी. ब्रह्मांड - सृष्टि, प्रकृति और प्राणी जगत की भूमिका का रहस्योद्‌घाटन किया था.

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा और समझा जाये, तो पाया जायेगा, कि चाहे वह नर हो या नारी हो, पशु या पक्षी हों, सबकी प्राथमिक आवश्यकता है, उसका पेट या भूख प्यास. किंतु जिसके समाधान के लिए राजनैतिक शतरंज, कभी धर्म कभी कर्म के नाम पर चलती रही और चलती रहेगी, हिंदू धर्म में मिलता है -आर्यावर्ते, जंबू द्विपे, भरत खंडे, यह मंत्र जब रचा

गया होगा जब इस देश की सांस्कृतिक सीमा, मध्य एशिया तक रही होगी, जबकि अखंड भारत का नारा लगाने वाले जानते नहीं हैं या भूल चुके हैं कि वह बचा खुचा अखंड भारत, अंग्रेजों के औपनिवेशवाद में, प्रशासनिक कारणों से टूट चुका है : श्रीलंका -१९११ में, म्यामार -१९४७ में , आज़ाद कश्मीर -१९४८ में, तिब्बत -१९५० में, बेरुबाड़ी -१९५४ में, भारत का सीमावर्ती भाग -१९५७ में, गुजरात का कक्ष क्षेत्र छारी - १९६३ में पाकिस्तान को दिया गया था, कच्छा तीवू - लंका को -१९७३ में, अरुणांचल का कुछ भाग चीन को -१९८२ में, बांग्लादेश १९७२ में पाकिस्तान से भाषा के आधार पर टूटा. अकसाई चीन का ६२ हज़ार वर्गमील क्षेत्र चीन ने लिया था. टेबुल आईलैंड पर बर्मा ने क़ब्ज़ा किया था जो म्यामार का प्रमुख अड्डा है.

यह राजनैतिक कूटनीतिक होना, कपटी, अतिक्रमण, जो ईशावास्योनिषद में पढ़ने को मिला, उससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा जा सकता है कि इस प्रकार के क्षेत्रीय अतिक्रमण से, धर्म या मानवता का कोई संबंध नहीं है. यह तो एकाधिकारवाद, स्वेच्छाचारिता का ही एक उदाहरण है - *प्रभुता पाये केहि मद नाहीं,* मानव और पशु प्रवृत्ति में सदा से चरितार्थ होती रही है. इसी प्रवृत्ति ने जन्म दिया है, भारत में दलित, हरिजन, मुस्लिम, क्रिश्चियन, सिख, जैन, बौद्ध, संप्रदाय को देश की मुख्यधारा से अपने को अलग देखने समझने की. इसमें इतना दोष उनका नहीं है, जितना हमारे तथा कथित हिंदु समाज का. इस संदर्भ में मधुवंसरी के चेनैई संपादक, जवाहर लाल मधुकर का कहना है कि हममें से कोई भी दलित नहीं है, हरिजन नहीं है. यह एक निर्विवाद सत्य है कि असंगत आर्थिक व्यवस्था ने कुछ को विपन्न बना कर दलित और हरिजन वर्ग को सोचने को मजबूर कर दिया और उनका सामाजिक स्तर इस कारण गिर गया कि राजनीति ने उनके इस स्तर का भरपूर लाभ उठया और आगे भी उठते रहेंगे. यह राजनैतिक स्वार्थ उठाना हर देश, समाज में विद्यमान है, हर जाति वर्ग और हर समय रहा है और रहेगा. इसका समाधान तब ही संभव है, जब समाज का हर प्राणी शिक्षित और अपनी सामाजिक भूमिका के प्रति जागरूक हो. जाति, धर्म संप्रदाय से ऊपर राष्ट्रहित में अपनी भूमिका अदा करे.

उपरोक्त तीन पुस्तकों का आशय भी यही है कि धर्म, मजहब का या भाषा के नाम पर क्षेत्रीय विभाजन, तो निहितार्थ होता है, किंतु उसका कुप्रभाव, मानवता पर नहीं पड़ना चाहिए. लेखक का यह विश्वास है कि एक समय ऐसा आयेगा, जब प्रकृति प्रकोपों से त्रस्त, हर देश मानव के प्रति अपने दायित्वों से गुरेज़ नहीं करेगा और त्रस्त होकर, जीवन के यथार्थ को पहिचान कर एक दूसरे का सामीप्य चाहेगा, जैसे सुनामी लहर और बर्फीले तूफ़ान से आज़ाद कश्मीर के लोगों ने चाहा और भारत ने मानवता के नाम पर उनकी सहायता की थी. अतः यह कहना अनुचित न होगा कि जीव जंतु से लेकर मानव को भूख की तृप्ति मुख्य रूप से प्रभावित करती है, बाद में भरे पेट से वह अनेक फ़ितरत के काम करने लगता है.

अंत में मेरा मानना है कि यदि प्रबुद्ध हिंदु-मुस्लिम लोग परस्पर सौहार्द चाहते हैं, तो आपस में मिल बैठ कर सब मसलों पर 'संवाद' करें. चाहें वह मंदिर-मस्जिद का मसला हो, कश्मीर का मसला हो, या सब धर्मों के लिए एक क़ानून की बात हो. इस तरह सियासी स्वार्थ स्वतः समाप्त हो जायेगा, इसी को वैचारिक क्रांति कहा जा सकता है जो समय की मांग है. वैचारिक परिवर्तन वैचारिक क्रांति मुस्लिम समाज के लिए भी उतनी ही समीचीन है जितनी हिंदुओं के लिए है.

डी-१४, शहज़ादा कोठी, रायबरेली-२२९ ००१

लघुकथा

भ्रष्टाचार

राजेंद्र निशेश

संसद में पूर्ववत जोरदार हंगामा हो रहा था और जनता टी. वी. स्क्रीन पर इसका भरपूर आनंद ले रही थी. विरोधी-पक्ष आरोप लगा रहा था कि वर्तमान सत्तापक्ष के इस सेवा काल में भ्रष्टाचार का बीज उस काल में बोया गया था जब वर्तमान विरोधी-पक्ष सत्ता में था. भ्रष्टाचार को खाद-पानी भी उसी काल में भरपूर दिया गया. जिससे यह पौधा पनप सका और आज एक वट-वृक्ष बन चुका है. जैसा कि संसदीय प्रणाली की परिपाटी है, विरोधी पक्ष इस आरोप को स्वीकार नहीं रहा था और सारा दोष वर्तमान सरकार के माथे पर मढ़ रहा था. उसका कहना था कि मुख्य विषय यह है कि भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए सरकार को कोई अहम् भूमिका निभानी चाहिए ताकि त्रस्त जनता सुख की सांस ले सके. सरकार का मानना था कि काम अति कठिन है, क्योंकि 'मर्ज़ बढ़ता गया, ज्यों-ज्यों दवा की,' वाली स्थिति इस मुल्क में आ चुकी है. यह रोग महामारी की तरह हमारी रगों में फैल चुका है बल्कि नासूर बन चुका है.

सांसदों और विरोधी पक्ष की भावनाओं को ध्यान में रखते हुए सरकार ने अंततः आश्वासन दिया कि भ्रष्टाचार को एक वर्ष में उखाड़ कर बाहर फेंक दिया जायेगा. एक वर्ष पश्चात् सरकार ने सदन के पटल पर एक नया शब्द-कोष रख दिया, इसमें भ्रष्टाचार शब्द को उड़ा दिया गया था और उसके स्थान पर लिखा था - सेवा-शुल्क !

२६९८, सेक्टर ४० सी, चंडीगढ़-१६००३६

पुस्तक समीक्षा

'विसंगतियों का आईना : विष-बीज'

✍ डॉ. दामोदर खड़से

"विष-बीज" (लघुकथा संग्रह) : **सूर्यकांत नागर**
प्रकाशक : किताब घर, २४/४८५३ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२. **मू.** : ७५/- रु.

लघु व्यंग्य कथाएं हमारी सामाजिक विसंगतियों और राजनैतिक विरोधाभासों को बहुत गहराई से छूती हैं. समाज के ऐसे लोगों को बहुत क़रीब से देखती हैं जो समाज-सेवा का मुखौटा लगाकर अपना स्वार्थ साधने में लिप्त हैं. सूर्यकांत नागर का लघु कथा संग्रह "विष-बीज" उपर्युक्त बातों को उजागर करता है. सूर्यकांत नागर कहते हैं-"लघुकथा के माध्यम से कोई बारीक बात कही जाये, चाहे फिर वह स्खलित होते मानवीय व नैतिक मूल्यों की हो, मनुष्य के दोहरे और दोगलेपन की हो, पारिवारिक रिश्तों की हो, सामाजिक, राजनैतिक विसंगति की हो, स्त्री-विमर्श की हो या मनोविज्ञान की हो ! इन्हीं विषयों के इर्द-गिर्द लघुकथाएं बुनाने का प्रयास रहा है."

सूर्यकांत नागर के "विष-बीज" में ७० से ऊपर छोटी-छोटी कहानियों का संकलन है. हमारे समाज में प्रचलित मिथक और यथार्थ के बीच हमारे समय की विसंगतियों को लेखक ने बड़ी सफ़ाई से चित्रित किया है. "रावण दहन" में १२ वर्षीय किशोर असमंजस में है कि दशहरे के दिन जलाना किसे है ? रावण को या नेताजी को ! "विष-बीज" नामक लघुकथा में लेखक बाल-मन पर धर्म की जिज्ञासा को बहुत सूक्ष्मता से रेखांकित करता है. "प्रदूषण" में आदमी के भीतर के प्रदूषण के मनोविज्ञान को लेखक ने अच्छी तरह पिरोया है. "पर-पीड़ा में सुख" टिप्पणीनुमा इस लघुकथा में लेखक समाज के मनोविज्ञान की ओर इशारा करता है. "लड़की पूरे जिले में अव्वल नंबर से पास हुई है, इसका किसी ने नोटिस नहीं लिया. लड़की घर से भाग गयी, इसकी चर्चा पूरे क़स्बे में हुई."

इसी प्रकार ममत्व, कुकिंग क्लास, आकलन, दृष्टिकोण, विकास, आत्मसुख, धर्म-कर्म, बाज़ार, मां, देवी पूजा, राम-राज जैसी लघु कथाएं हमारे वर्तमान को बखूबी रूपायित करती हैं.

सूर्यकांत नागर एक प्रसिद्ध कथाकार हैं. उपन्यासों और कहानियों के माध्यम से उन्होंने हमारे आसपास को विस्तार से उकेरा है. मानव मन की अतल गहराइयों में बैठकर उन्होंने मनुष्य के स्वभावगत गुण-दोषों को और उसकी आशा-आकांक्षाओं को उजागर किया है. साथ ही, लघु कथाओं के माध्यम से बहुत कम शब्दों में उन्होंने बड़ी से बड़ी बात कही है. सामाजिक विसंगतियां राजनैतिक चालबाजियां और तमाम तरह के दिखावे, ढकोसले, दो-मुंहेपन और ढोंग को सूर्यकांत नागर ने कम से कम शब्दों में मुखरता प्रदान की है. लघु व्यंग्य कथा के रूप में जो विधा हिंदी संसार में पनपी है उसमें सूर्यकांत नागर की भागीदारी बहुत बड़ी है. कथाकार बलराम ने लघुकथा पर बहुत काम किया है. उन्होंने लघु कथा के भारतीय और विश्व कोश तैयार किये हैं. लघु कथाओं के विभिन्न पहलुओं और आयामों की चर्चा बलराम ने अपनी पुस्तकों में की है. इस चर्चा में सूर्यकांत नागर का नाम शीर्ष स्थान पर आता है.

सूर्यकांत नागर की लघुकथा की एक पुस्तक आयी है इसका शीर्षक है "प्रतिनिधि लघु कथाएं." इसे "लघु कथा शिल्पी" से पुरस्कृत किया गया है. उनकी लघुकथाओं पर अनुसंधान कार्य भी चल रहा है. इसके अलावा उन्हें "लघु कथाचार्य सम्मान", "लघुकथा सम्मान" और "लघु कथा शीर्ष सम्मान" भी प्रदान किया गया है. उनकी लघु व्यंग्य कथाओं का बांग्ला, सिंधी, पंजाबी तथा मराठी में अनुवाद हो चुका है. कुल मिलाकर लघु कथाओं के क्षेत्र में एक प्रमुख हस्ताक्षर के द्वारा "विष-बीज" संकलन के रूप मे प्रस्तुत किया जाना हिंदी पाठकों के लिए एक उपलब्धि है. घर-परिवार, देश-समाज और दुनिया भर के जीवन में घट रही दैनिक घटनाओं का सूक्ष्म निरीक्षण और पौराणिक, धार्मिक, मिथकीय संदर्भों का आलंबन बनाकर विसंगतियों को पिरोकर समाज को एक दृष्टि देने का काम भी अपनी लघुकथा में वे करते हैं. ऐसा कहा जा सकता है कि व्यक्ति को निरपेक्ष भाव से अपने आपको देखने में ये लघुकथाएं सहायक सिद्ध होती हैं. संक्षेप मे कहा जाये तो समाज में फैली विद्रुपता, विसंगतियां और तमाम स्वार्थ-जनित घटनाओं के प्रतिबिंबों का आईना सूर्यकांत नागर पाठक के हाथों में सौंपते हैं.

डी/डी-८, वृंदावन कॉम्प्लेक्स, शांतिबन के पास, कोथरूड, पुणे - ४११ ०२९.

शब्दशिल्पियों के साक्षात्कार

✍ ओमप्रकाश कादयान

"शब्दशिल्पियों के सान्निध्य में (साक्षात्कार)" : **राजेंद्र परदेसी**
प्रकाशक : भारतीय कला-साहित्य संस्थान, विद्युतनगर, कोइलवर, भोजपुर (बिहार). **मू.** : २००/- रु.

राजेंद्र परदेसी रेखांकन कला व लेखन क्षेत्र के जाने-पहचाने हस्ताक्षर हैं. भारत की शायद कोई पत्रिका हो जिसमें इनके रेखांकन न छपते हों. इसी तरह हिंदी की क़रीब हर विधा पर लिखने वाले श्री परदेसी की गद्य-पद्य रचनाएं भी निरंतर छपती रहती हैं. कविता, लघुकथा, हाइकु, लोककथा तथा साक्षात्कार पर इनकी कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं.

'शब्दशिल्पियों के सान्निध्य में' इनकी नयी पुस्तक है जो

साक्षात्कार विधा पर हैं. वैसे भारत में साक्षात्कार, भेंटवार्ता का प्रचलन पौराणिक काल से है. भगवद्गीता कृष्ण और अर्जुन के बीच जिज्ञासाओं के समाधान का ही एक अप्रतिम रूप है, जिसके द्वारा मानव समाज को अलभ्य जानकारी भी होती आ रही है. नचिकेता-यम संवाद भी भारतीय मनीषा की महानतम उपलब्धि है. आज तो साक्षात्कार विधा पर ही अनेक विश्वविद्यालयों में शोध किये जा रहे हैं. अनेक शोधार्थियों ने इस विधा पर पी-एच.डी. की उपाधि प्राप्त की. राजेंद्र परदेसी दो दशक पूर्व से साहित्य जगत् के ख्यात् रचनाकारों से साक्षात्कार लेते आ रहे हैं. जो विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहे हैं, साथ ही अपनी पीढ़ी के सर्जकों के लेखन को परखने के लिए उनसे साक्षात्कार लिया है.

प्रसन्नता का विषय है कि ये सृजनधर्मी अब भी साधनारत हैं. साहित्यकार राजेंद्र परदेसी ने इस पुस्तक में देश के वरिष्ठ २४ साहित्यकारों के साक्षात्कार सम्मिलित किये हैं. परदेसी ने इनसे जो प्रश्न पूछे हैं उनमें परदेसी जी की साक्षात्कार कला प्रतिभा निखरकर सामने आती है. लेखक ने जो प्रश्न किये हैं उनसे पुस्तक में सम्मिलित साहित्यकारों के जीवन व उनकी साहित्य यात्रा से तो हमें परिचित करवाते ही हैं, साथ-साथ साहित्य की कई विधाओं पर विस्तार से चर्चा छेड़ती है. साहित्यकारों द्वारा दिये गये साक्षात्कारों से साहित्यिक विधाओं की बारीक जानकारियां दर-परत-दर खुलती-मिलती हैं. पाठकों व नये साहित्यकारों के लिए मार्गदर्शन का कार्य तो करती ही है, साथ ही साथ साहित्य जगत में नयी बहस छेड़ती हैं व शोध कार्य का रास्ता खोलती हैं.

'शब्दशिल्पियों के सान्निध्य में' पुस्तक में जिन २४ साहित्यकारों के साक्षात्कार सम्मिलित किये गये हैं वो हैं - क्रमशः विष्णु प्रभाकर, डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव, डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, डॉ. शोभनाथ यादव, डॉ. कुंवरपाल सिंह, डॉ. धर्मेंद्र गुप्ता, डॉ. कमलकिशोर गोयनका, डॉ. सियाराम तिवारी, ललित सुरजन, डॉ. शेरजंग गर्ग, डॉ. विष्णु पंकज, डॉ. बालशौरि रेड्डी, डॉ. भगवती चरण मिश्र, डॉ. परमानंद पांचाल, राधे श्याम शर्मा, डॉ. रामप्रसाद मिश्र, डॉ. श्याम सिंह 'शशि', राजी सेठ, डॉ. वीरेंद्र सक्सेना, डॉ. कौशलेंद्र पांडेय, डॉ. भागवत प्रसाद मिश्र 'नियाज', डॉ. विजय अग्रवाल, डॉ. जयनाथ मणि त्रिपाठी, सुरेश उजाला.

राजेंद्र परदेसी ने वैसे तो इन साहित्यकारों से विविध संदर्भों में सवाल कर बातचीत का माध्यम बनाया है, किंतु कुछ साहित्यकारों से उन साहित्यकारों की विशेष साहित्यिक विधाओं पर केंद्रित सवाल-जवाब का माध्यम रहा है.

वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु प्रभाकर से नाटक पर अधिक सवाल किये गये हैं तो डॉ. रमाकांत श्रीवास्तव से कविता व कहानी पर. इसी तरह डॉ. कमलकिशोर गोयनका से कथा-लघुकथा, ललित सुरजन से संपादन, डॉ. शेरजंग गर्ग से ग़ज़ल, हरियाणा साहित्य अकादमी के निदेशक राधेश्याम शर्मा से पत्रकारिता, डॉ. श्यामसिंह 'शशि' से कविता, राजी सेठ से कहानी, डॉ. वीरेंद्र सक्सेना, से कहानी-उपन्यास, डॉ. कौशलेंद्र पांडेय से व्यंग्य-कथा तथा सुरेश उजाला से कविता विधाओं पर केंद्रित अधिक सवाल किये हैं तथा इन साहित्यकारों ने इन विषयों की आवश्यक व महत्त्वपूर्ण जानकारियां पाठकों को दी हैं. हम यह कह सकते हैं कि इन साहित्यकारों की साहित्य सृजनकला जीवन अभ्यास से हमारा साक्षात्कार होता है. साहित्यकारों ने अपने जीवन अनुभव पाठकों के साथ बांटे हैं.

राजेंद्र परदेसी की साक्षात्कार पर केंद्रित इस पुस्तक से जहां साहित्य प्रेमियों, साहित्य के नये हस्ताक्षरों व अन्य साहित्यकारों को साहित्य जगत की महत्त्वपूर्ण जानकारियां मिलेंगी वहीं यह पुस्तक साक्षात्कार विधा को समृद्ध करने में सक्षम होगी, ऐसी उम्मीद की जा सकती है. पुस्तक कॅवर पर स्वयं परदेसी द्वारा बनाया सुंदर रेखांकन है तो क़ाग़ज बढ़िया, मुद्रण स्तरीय है, प्रूफ की ग़लतियां न के बराबर हैं. पुस्तक पठनीय, संग्रहणीय है.

२३४, सेक्टर-१३, हिसार (हरि.)-१२५००५.

समकालीन समाज की अनुभूतियां और उनका विमर्श

✍ गोवर्धन यादव

अनुभूतियां और विमर्श (निबंध संग्रह) : **कृष्ण कुमार यादव** **प्रकाशक** : नागरिक उत्तर प्रदेश, प्लॉट नं. २, नंदगांव रिजॉर्ट्स, तिवारीगंज, फैजाबाद रोड, लखनऊ-२२६०१९. **मू.** : २५०/- रु.

मनुष्य एक विचारवान प्राणी है. उसे साहित्य, समाज और परिवेश से प्राप्त मानस संवेदनों के संदेशों से जिन अनुभूतियों की उपलब्धि होती है, उनके ही विमर्श से नयी-नयी व्याख्याओं को आधार मिलता है. युवा लेखक एवं भारतीय डाक सेवा के अधिकारी कृष्ण कुमार यादव का द्वितीय निबंध संग्रह "अनुभूतियां और विमर्श" इसी चिंतन, मनन और विवेचन को आधार देती मानसी वृत्ति का परिणाम है, जिसमें लेखक ने साहित्य और साहित्यकार, व्यक्ति और समाज, विज्ञान और प्रौद्योगिकी, वैश्विक चेतना तथा सांस्कृतिक अध्ययन के अनेक आधुनिक और उत्तर आधुनिक तथ्यों को व्याख्यायित करने का प्रयास किया है.

समीक्ष्य निबंध संग्रह 'अनुभूतियां और विमर्श' में कृष्ण कुमार यादव के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित विभिन्न १५ लेखों को निबंध संग्रह के रूप में संकलित कर प्रस्तुत किया गया है. इस संग्रह के निबंधों को तीन भागों में बांटा जा सकता है- व्यक्तित्व व कृतित्व पर आधारित निबंध, सांस्कृतिक प्रतिमानों पर आधारित निबंध एवं समसामयिक व ज्वलंत मुद्दों पर आधारित

निबंध, व्यक्तित्व व कृतित्व आधारित लेखों में देश के मूर्धन्य साहित्यकारों व मनीषियों - मुंशी प्रेमचंद, राहुल सांकृत्यायन, मनोहर श्याम जोशी, अमृता प्रीतम व डॉ. अंबेडकर के जन्म से महाप्रयाण तक के सफ़र को क्रमशः लिपिबद्ध कर बिखरे मनकों को एकत्र कर माला के रूप में तैयार कर उनके जीवन-संघर्ष व भारतीय समाज में योगदान को रेखांकित करने का सार्थक प्रयास किया गया है. आज जब हर लेखक पुस्तक के माध्यम से सिर्फ़ अपने बारे में बताना चाहता है, ऐसे में 'अनुभूतियां और विमर्श' में तमाम साहित्यकारों व मनीषियों के बारे में पढ़कर सुकून मिलता है और इस प्रकार युवा पीढ़ी को भी इनसे जोड़ने का प्रयास किया गया है.

प्रेमचंद हिंदी साहित्य ही नहीं विश्व साहित्य के पटल पर मनुष्य की यथार्थ ज़िंदगी के हमराही रहे हैं. स्वतंत्रता पूर्व के वर्षों में जब भारतीय समाज अनेक कुरीतियों और विसंगतियों के कारण सभी नैतिक मूल्यों से च्युत हो रहा था, तब इस लेखक की कहानियों में व्याप्त प्रगतिशील विचारों और जनजागृति के संदेशों से साहित्य लोकहित के संवर्धन का एक नया आंदोलन बना था. राष्ट्रप्रेम, स्त्री विमर्श, जातिप्रथा, अशिक्षा, निर्धनता, साधनहीनता, किसान, मज़दूर, सरकारी तंत्र आदि के तत्कालीन स्वरूप और उनके परिणाम और दुष्परिणाम प्रेमचंद के साहित्य में किस प्रकार रचे बसे हैं, कृष्ण कुमार यादव की इस पुस्तक में गंभीर अध्ययन का विषय बनकर उभरे हैं.

बहुभाषाविद्, धर्म, दर्शन और अध्यात्म के तलस्पर्शी विद्वान, यायावर, महामानव राहुल सांकृत्यायन का संपूर्ण जीवन प्रायोगक ज्ञान के कर्मशील चेतन का विकाससमान स्वरूप था. उन्होंने किसी एक दल के दलदल को कभी नहीं स्वीकारा था. वह विद्रोही आत्मा के ज्योतिर्मय प्रज्ञा पुरुष थे. विवेचना के क्रम में श्री यादव ने अपने कथनों को राहुल जी के जीवन दर्शन से, उनके लेखन से तथा उनकी राजनैतिक और प्रगतिशील अवधारणाओं के संदर्भों से बहुविध संवार कर जिस जटिल बौद्धिकता से मुक्त किया है, वह पाठक के मन को समाज, सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, विज्ञान इत्यादि से अनुप्राणित मनीषी के सन्यास से साम्यवाद तक ले जाकर उस भावभूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयास है, जहां लेखक कहता है- "भागो नहीं दुनिया बदलो."

मनोहर श्याम जोशी का बहुआयामी साहित्यिक व्यक्तित्व, उनका आम आदमी के लिए लेखन, पत्रकारिता के उच्च आदर्श, हम लोग; बुनियाद, जैसे धारावाहिकों के सर्जक तथा क्याप जैसे साहित्यिक सृजन के लिए अकादमी पुरस्कार प्राप्त करना साहित्य के इतिहास की अभूतपूर्व उपलब्धि हैं. "खो गया किस्सागोई" शीर्षक से इस पुस्तक के लेखक ने परंपराओं, रुचियों और विमर्शों के जीवंत उद्धरण उद्धृत किये हैं, जो जोशी जी के प्रति श्रद्धांजलि है. इसी प्रकार अमृता प्रीतम को, जितने नज़दीक से लेखक ने देखने का प्रयत्न "गुम हो गया रसीदी टिकट" नामक लेख में किया है स्वयं में एक जिज्ञासापूर्ण सतत उत्सुकता का निर्वाह करती कहानी का कथानक ही लगता है.

"दलितों के मसीहा : डॉ. अंबेडकर" को अंबावाडेकर से अपने इस नाम तक पहुंचने के लंबे सफ़र में जिन सामाजिक विसंगतियों से होकर चलना पड़ा था तथा अपने कटु अनुभवों से उन्होंने जो कुछ प्राप्त किया था, उनसे विचलित न होते हुए किस प्रकार शिक्षाविद् राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्री, विधिवेत्ता और संविधाननिर्मात्री परिषद के महत्त्वपूर्ण पद तक पहुंचकर एक सर्वमान्य नेता बनने में सफलता पायी थी, उसका विवरण भी 'अनुभूतियां और विमर्श' के पृष्ठों पर अंकित है.

भारतीय संस्कृति के प्रतिमान विषयक लेखों में "नारी शक्ति के उत्कर्ष" में समाज में नारी-विकास के विभिन्न चरणों की व्याख्या करते हुए वर्तमान परिवेश में नारी जगत द्वारा प्राप्त की जा रही ऊंचाइयों को इंगित किया गया है, चाहे वह पंचायती राज द्वारा हो या घरेलू महिला हिंसा अधिनियम द्वारा हो या रूढ़िवादी वर्जनाओं के तोड़ने द्वारा हो. 'इतिहास के आयाम' में लेखक ने ऐतिहासिक धरोहरों के महत्व को परिभाषित करते हुए, हाल के दिनों में इतिहास पुनर्लेखन को लेकर उठे सवालों के बीच इतिहास की विभिन्न धाराओं को रेखांकित किया है. 'भारतीय परिप्रेक्ष्य में धर्मनिरपेक्षता' लेख में पाश्चात्य व भारतीय संदर्भों में धर्म की तुलनात्मक महत्ता को रेखांकित करते हुए भारतीय समाज में धर्म के अवदानों व विभिन्न समयों में धार्मिक एकता को दर्शाते हुए अंततः संवैधाविक उपबंधों के माध्यम से वर्तमान समाज में धर्म का विश्लेषणात्मक विवेचन किया गया है. लेखन का कथन बड़ा सटीक है कि 'तुष्टीकरण की नीतियों के बीच हमने एक धर्मनिरपेक्ष राज्य को तो अपना लिया है पर धर्मनिरपेक्षता अभी तक हमारे सामाजिक जीवन का अंग नहीं बन पायी है.' 'भारतीय संस्कृति और त्यौहारों के रंग' इस संग्रह का सबसे लंबा लेख है. इसमें लेखक ने देश के कोने-कोने में मनाये जाने वाले महत्त्वपूर्ण त्यौहारों, इनके पीछे छिपी मान्यताओं, रीति-रिवाजों और ऐतिहासिक घटनाओं, उनको मनाने के ढंगों में विविधता और उनकी प्रासंगिकता पर रोचक ढंग से प्रकाश डाला है. लेखक ने इस लेख के माध्यम से अंततः सामाजिक समरसता, राष्ट्रीय एकता व अखंडता एवं त्यौहारों-पर्वों को मनाने की मूल मानवीय भावनाओं को संजोने की कोशिश की है. आधुनिकता और उत्तर आधुनिकता के द्रुतगामी विकास के बढ़ते चरण जिस प्रकार नित नये ज्ञान और विज्ञान के आलोकमयी झरोखे खोलते जा रहे हैं, उनसे ही युवामन चकाचौंध के भूलभुलैया पूर्ण जीवन में दिगभ्रमित हो रहा है. फिल्मी दुनिया, उसमें व्याप्त जीवन मूल्यों को तिलांजलि देती नयी पीढ़ी और उस अधोगमन की ओर उत्सुकता भरी निगाहों में वास्तविक ज़िंदगी से दूर के सपने तो चिंता का विषय हैं ही, विद्यार्थियों का राजनीतिज्ञों द्वारा शोषण, शिक्षा का गुणात्मक अवमूल्यन, नेतृत्व की अक्षमता, साहित्य, कला, संस्कृति और ज्ञान की अवहेलना से उपजी नकारात्मक सोच, "युवा भटकाव की स्थिति क्यों" शीर्षक लेख में बहुत

सटीक ढंग से उकेरी गयी है.

भूमंडलीकरण एक वास्तविकता है. सूचना-प्रौद्योगिकी और यातायात के साधन तथा आर्थिक उदारीकरण के दौर में जीवन के सभी पक्ष प्रभावित हुए हैं, फिर भाषा और साहित्य अप्रभावित कैसे रह सकते हैं ? हिंदी भाषा पर इसका क्या प्रभाव हुआ है और क्या होगा, इस तथ्य को वर्तमान में देखते हुए अतीत के लेखन और पत्रकारिता के इतिहास तक पहुंचता लेखक 'भूमंडलीकरण के दौर में तेज़ी से बढ़ते भारतीय क़दम' में लेखक ने १९९० के बाद अर्थव्यवस्था में तेज़ी से आये उछाल को रेखांकित किया है और उद्घोषणा की है कि - 'भारत को एक बार फिर से जगद्गुरू की भूमिका निभाने के लिए तैयार हो जाना चाहिए.' बाज़ारीकरण, दृश्य और श्रव्य मीडिया, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, उपभोक्तावाद आदि का "ब्रांड इमेज की महत्ता" शीर्षक लेख में तथा "इंटरनेट का बढ़ता प्रभाव" में विश्व-ग्राम की नज़दीकियों से भाषा, संस्कृति, व्यापार, व्यवसाय, शिक्षा और जीवन के सभी क्षेत्रों की सूचनाओं के उपलब्ध होने के साधन रूप में भी इस पुस्तक में चर्चा का विषय बना है. "कोचिंग संस्थाओं का फैलता मायाजाल" भी लेखक के दृष्टिपटल से गुज़रा है और उसने कोचिंग संस्थानों द्वारा अपनायी जाने वाली तकनीकों एवं उनके मायाजाल में फंसते सामान्य विद्यार्थियों की दुर्दशा पर प्रकाश डालते हुए कोचिंग व्यवस्था के चलते विद्यालयों में अध्यापन के गिरते स्तर पर भी चिंता व्यक्त की है.

'अनुभूतियां और विमर्श' संकलित निबंध वर्णनात्मक होते हुए भी तथ्यपरक गंभीर वैचारिकता के विमर्श हैं. उनमें रोचक शैली में कही गयी विषयवस्तु का साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है. परत दर परत नये-नये संदेश जन ग्राह्य भाषा में दिये गये हैं और प्रामाणिक संदर्भ प्रस्तुत किये गये हैं. कृष्ण कुमार यादव इस पुस्तक में साहित्य और साहित्यकार, व्यक्ति और समाज, विज्ञान और प्रौद्योगिक, वैश्विक चेतना तथा सांस्कृतिक अध्ययन के अनेक आधुनिक और उत्तर आधुनिक तत्त्वों को व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं. लेखन कला में प्रबंध या निबंध का साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान होता है. इस पुस्तक के लेखक ने उस अपेक्षा की पूर्ति का प्रयत्न किया है. निबंध के स्वरूप विवेचन में ही नहीं बल्कि उनके संपादन में भी लेखक ने अपनी शोधपरक दृष्टि द्वारा विषय-वस्तु को ऐतिहासिक तारतम्य की चासनी के साथ परोस कर अपनी लेखनी के कौशल का परिचय दिया है, जो निश्चय ही पाठकों के लिए उपयोगी बन पड़ा है. कुल मिलाकर कृष्ण कुमार यादव का अल्प समय में यह दूसरा निबंध संग्रह 'अनुभूतियां और विमर्श' एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है जो बड़े श्रम, विवेक और विशेषता के साथ साध्य हुई है. एक प्रशासक होने के साथ-साथ मानवीय संवेदनाओं से गहरे रूप में जुड़े हुए कृष्ण कुमार यादव का यह संकलन वैश्विक जीवन दृष्टि, आधुनिकता बोध तथा सामाजिक संदर्भों को विविधता के अनेक स्तरों पर समेटे हिंदी निबंध के जिस पूरे परिदृश्य का एहसास कराता है वह निबंध कला के भावी विकास का सूचक है. यह एक दस्तावेज़ी निबंध संग्रह है, जो विचारों की धरोहर होने के कारण संग्रहणीय भी है.

१०३, कावेरी नगर, छिंदवाड़ा (म.प्र.)

ग्यारहवें अ. भा. प्रतिष्ठापूर्ण अंबिकाप्रसाद 'दिव्य' पुरस्कारों हेतु प्रवृष्ठियां आमंत्रित

यशस्वी उपन्यासकार, कवि, चित्रकार एवं साठ महत्त्वपूर्ण ग्रंथों के सर्जक **स्व. अंबिकाप्रसाद 'दिव्य'** की स्मृति में साहित्य सदन, सागर (म. प्र.) द्वारा अनेक वर्षों से कई साहित्यिक पुरस्कार प्रदान किये जा रहे हैं. वर्ष २००७, दिव्य जी का शताब्दी वर्ष होने के कारण, पुरस्कारों की संख्या एवं राशि में भी वृद्धि की गयी है.

उपन्यास विधा हेतु : पांच हज़ार रुपये
कहानी विधा हेतु : दो हज़ार एक सौ रुपये
काव्य विधा हेतु : दो हज़ार एक सौ रुपये
नाटक, व्यंग्य, ललित-निबंध, पत्रकारिता, एवं दिव्य साहित्य पर शोध : दो हज़ार एक सौ रुपये
बाल साहित्य हेतु : दो हज़ार एक सौ रुपये
अन्य विधाओं की श्रेष्ठ कृतियों पर, साहित्यिक-पत्रिकाओं सहित : दिव्य रजत अलंकरण

राष्ट्रीय ख्याति के ग्यारहवें प्रतिष्ठापूर्ण साहित्यिक दिव्य पुरस्कारों हेतु जनवरी २००४ से दिसंबर २००६ के मध्य प्रकाशित पुस्तकों, साहित्यिक पत्रिकाओं (के दो अंकों) की तीन-तीन प्रतियां, प्रत्येक प्रविष्ठि के लिए सौ रुपये प्रवेश शुल्क, लेखक, संपादक के दो रंगीन चित्र, ३० सितंबर २००७ तक साहित्य सदन, द्वारा श्रीमती राजे किंजल्क, सी-५, आकाशवाणी कॉलोनी, सिविल लाइन्स, सागर-४७०००१ (म. प्र.) के पते पर पहुंच जाना चाहिए.

जगदीश किंजल्क
संपादक 'दिव्यालोक' एवं संयोजक 'दिव्य पुरस्कार'

बंटवारा

✍ जितेंद्र 'जौहर'

बेटों ने आंगन में इक
दीवार खड़ी कर दी;
पिता बहुत हैरान, उधर
महतारी सिसक रही.

बड़कू बोला, "अम्मा के
सारे गहने लेंगे !"
मझला पूछे, "बगिया वाला
खेत किसे देंगे ?"
ये सवाल सुन, मइया का
दिल चकनाचूर हुआ;
बूढ़े पांवों के नीचे की
धरती खिसक रही.
पिता बहुत हैरान...

बंटवारे ने, देखो ! कितनी
राह गही संकरी.
बड़कू ने गैय्या खोली, तो
मझले ने बकरी !
रस्सी थामे निकल पड़े ले
नये ठिकाने पर;
मुड़-मुड़ खूंटा ताके बेबस
बछिया बिदक रही.
पिता बहुत हैरान...

छोटू तो छोटा ठहरा,
कुछ बोल नहीं पाया,
उसके हिस्से आया,
अम्मा-दद्दा का साया.
"गैय्या और मड़ैय्या तो
दे दो... बड़के भैय्या !"
इतना भी कहने में उसको
लगती झिझक रही.
पिता बहुत हैरान...

एन-३३/६, रेणुसागर, सोनभद्र (उ. प्र.) २३१२१८

यूं भी मरते हैं हम

✍ अशोक सिंह

मरने से पहले भी मरता है आदमी
कितनी-कितनी बार
कितनी-कितनी बार लेता है जन्म
जन्म लेने के बाद भी.

बार-बार जन्माने और मरने की
जटिल प्रक्रिया से
हर रोज़ गुज़रता है आदमी,
ख़ुद से एक लंबी बहस के बाद
जोड़ता है अपने आपको
अगले हादसे से लड़कर मरने के लिए.

मरने के लिए ज़रूरी नहीं है
किसी मोटर के नीचे आ जाना
सांस का धमनियों की पकड़ से छूट जाना
या फिर लगा लेना ज़िंदगी से ऊबकर
गले में फंदा.
मरने के लिए काफ़ी है
अपने आपसे अपने को चुराते
अचानक अपने ही हाथों पकड़े जाना
जो हमारी संवेदनाओं के बहुत क़रीब था
उसका सामने से चुपचाप
अनजान बनकर गुज़र जाना.

कम नहीं मरने के लिए
अपने
किसी बहुत अपने से
दुख के समय सुनना
चंद औपचारिक शब्द
एक बेहद अपरिचित भाषा...

जागृति मंच, पुराना दुमका, केवटपाड़ा,
दुमका (झारखंड)-८१४१०१

पाठकों / ग्राहकों से निवेदन

कृपया 'कथाबिंब' की सदस्यता राशि मनी ऑर्डर से भेजते समय, मनी ऑर्डर फॉर्म पर 'संदेश के स्थान' पर अपना नाम, पता पिन कोड सहित साफ़-साफ़ लिखें. मनीऑर्डर भेजने के बाद पोस्टकार्ड पर पूरे पते सहित इसकी सूचना अवश्य दें. आपकी सदस्यता अगले अंक से लागू होगी. पते में परिवर्तन की सूचना भेजते समय कृपया नये पते के साथ पुराने पते का उल्लेख करना न भूलें.

ग़ज़लें

✍ महेश कटारे 'सुगम'

सख़्त राहे फ़र्ज़ पर हर सुबह डट जाता है दिन,
शाम आती देखकर चुपचाप हट जाता है दिन ।
सूर्य किरणों की पतंगें खींचने लगता है जब,
शाम की घिर्री पै धागे सा लिपट जाता है दिन ।
रात भर चौसर पै होता चाल चलने का रियाज़,
एक ही लम्हे में सब चालें पलट जाता है दिन ।
सर्दियों में रात पूरे पैर फैलाती है जब,
एक कछुये की तरह ख़ुद में सिमट जाता है दिन ।
ज़िंदगी में रंग भरता है किसी के वास्ते,
उर किसी के वास्ते कोने से फट जाता है दिन ।
मन मुआफ़िक़ हो 'सुगम' गर ज़िंदगी के सिलसिले,
बिन पढ़े ही वक़्त के पन्ने पलट जाता है दिन ।

दिया दरया ने यूं परिचय मैं धरती का दफ़ीना हूं,
मैं आंसू हूं घटाओं का पहाड़ों का पसीना हूं ।
फ़लक के कान में धरती ने हंसकर फुसफुसाया यूं,
थिरकती, नाचती, गाती जवां चंचल हसीना हूं ।
कहा सूरज ने मुस्का के मुझे तुम क्या समझते हो ?
फ़लक की गोद में बैठा हुआ मैं इक नगीना हूं ।
हिमालय ने जुबां खोली कि मेरी भी तो हस्ती है,
समंदर के किनारे पर खड़ा आला सफ़ीना हूं ।
फ़लक बोला 'सुगम' अपने किसी बेटे के कामों से,
हुआ हो फूलकर चौड़ा मैं उस वालिद का सीना हूं ।

हॉस्पिटल कैंपस, कुरवाई, जिला-विदिशा (म. प्र.)

गुज़र गये जलजले

✍ दयाशंकर 'सुबोध'

गुज़र रहा है यह साल
गुज़र गये हैं वे,
गुज़र रहे हैं ये,
गुज़र गये कितने वर्ष,
अंक में लिये विषाद हर्ष,
गुज़र गये क़िले,
गुज़र गये मिले,
फूल अध खिले
मूक अधर सिले
गुज़र गये ज़लज़ले
बिन-वर्षा वर्षों हाथ-मले
न ये मिले, न वो मिले, न गले लगे,
शिकवे-गिले,
गुज़र रहा है चंद्रमा,
सूर्य के ताप से,
गुज़र रही है पृथ्वी,
किस आश से, आकाश से,
अनंत काल से,
क्या गुज़र रही है हम पर,
हो रही गुज़र से गुज़र,
न किसी से ना न कोई नुकर
गुज़र रहे हैं हम भी सालों साल से.

२३५/६, गौरी कुटी, सिविल वार्ड-४, दमोह - ४७०६६१

लघुकथा

दृष्टि

✍ सिद्धेश्वर

'स्साले हमारे पैसों पर ऐश करते हैं. मांस को सूंघ रहे कुत्तों की तरह, प्लेटफॉर्म पर रुपये-पैसे को सूंघते फिरते हैं. पांच, दस रुपये तक भी नहीं छोड़ते...'

'माफ़ करना यार. तुम्हारे पिताजी मुझसे ऐसे लड़के का ही पता पूछ रहे थे, जो रेल विभाग में टी. सी. हो या टी. टी. ई. की नौकरी कर रहा हो.'

'मैंने तुम्हारे पिताजी को साफ़-साफ़ कह सुनाया था कि- रेल का टी. सी. हो टी. टी. ई., इनका दिल बहुत कठोर होता है. ग़रीबों को भी नहीं छोड़ता. मुर्दे तक की जेब से भी रुपये-पैसे निकाल लेने में नहीं चूकता.'

'मेरी बात को सुनकर उन्होंने क्या कहा, मालूम है ?'

झेंपते हुए दिनेश ने कहा - 'क्या कहा था मेरे पिताजी ने?'

'उन्होंने कहा कि ऐसे लड़के ही घर-परिवार को धन-दौलत से भर देते हैं. अपने बाल-बच्चों, पत्नी की अच्छी देखभाल करते हैं. उनका रहन-सहन, पढ़ाई-लिखाई ऊंची क्वालिटी की होती है. एक बैंक क्लर्क तो मेरी नज़र में है, जिसे चार लाख रुपये दहेज में देने की बात कर आया हूं. मगर यदि कोई टी. सी. या टी. टी. ई. की नौकरी करने वाला होनहार लड़का मिल जाये, तो उसके लिए मैं सात-आठ लाख रुपये तक 'दहेज' में देने को तैयार हूं. जरा अपने विभाग में ऐसे कुंआरे लड़के का पता बतलाना. क़िस्मत वालों को ऐसा दामाद नसीब होता है.'

अवसर प्रकाशन, पोस्ट बाक्स नं. २०५, करबिगहिया, पटना-८००००१

एक कविता : शकूर मियां पर

✍ रमेश मनोहरा

शकूर मियां, तुम तांगा चलाकर
अपनी गुज़र करते हो
अनपढ़ हो
इसलिए हर मोर्चे पर
असफलता का शिकार बनते हो
तुम लाख चाहो निकलना
उनके बनाये जाल से
मगर निकल नहीं रहे हो
ऊपर नहीं उठ रहे हो
चूंकि तुम्हारी ताक़त का इस्तेमाल
वे अपने लिए करते हैं
तुम्हें अपना मोहरा बनाकर रखते हैं,
तुम उनकी शतरंज की चाल में
आज तक फंसते आ रहे हो
ज़ुल्म, अन्याय और शोषण की चक्की भी
पीसते आ रहे हो,
आगे भी तुम्हारा इस्तेमाल
वे इसी तरह करते रहेंगे,
तुम्हें बढ़ने से रोकते रहेंगे,
अतः अनपढ़ता का ये घेरा तोड़ो
अ...आ...इ...ई...अलीफ़-बे से
अपना नाता जोड़ो,
जब पढ़ लिख जाओगे
तब ज़ुल्म, अन्याय
और शोषण के ख़िलाफ़
अपनी लड़ाई ख़ुद लड़ोगे.

शीतला गली, जावरा (म. प्र.)

सेवा-निवृत्ति

✍ उल्लास मुखर्जी

आज मन कुछ भारी है
जबकि मौसम ख़ुशमिज़ाज है
ख़ूब खिली हुई है धूप
बच्चे उछल रहे हैं
सड़कों पर है चहल-पहल
हर आदमी व्यस्त है
अपने-अपने काम-काज में,
दुनिया में जारी है आपाधापी
सद्दाम की फांसी, नित्तरी
यथावत चल रहा है जीवन
फिर भी मन कुछ भारी है,
एक अच्छा आदमी आज
अपने कर्ममय जीवन से
ले रहा है विदाई,
एक अच्छा आदमी,
जो ईमानदार है,
मिलनसार है,
खुशमिज़ाज है,
समयबद्ध है,
कर्तव्यनिष्ठ है,
विदाई ले रहा है ऐसे समय में
जब भ्रष्टाचार बन गया है शिष्टाचार,
मिलनसार - चाटूकार
समयबद्धता - बेवकूफ़ी
कर्तव्यपरायणता - पागलपन,
हवा में कहीं नहीं है भारीपन
फिर भी मन आज कुछ भारी है.

कमरा नं. १४, सदर अस्पताल,
मधेपुरा (बिहार)-८५२११३

सागर-सीपी ...शेष भाग

के कहानीकारों की सूची इतनी लंबी है कि सबके नाम याद रखना भी मुश्किल है. हो सकता है, कुछ नाम छूट भी गये हों.

● **अपनी ८६ वर्षीय अवस्था में लगभग ७० वर्षीय साहित्यिक जीवन के वर्तमान पड़ाव पर आज कैसा महसूस करते हैं ? और आजकल क्या लिख रहे हैं ?**

पूर्णतया संतुष्ट ! वर्माजी ! -विभिन्न विधाओं में मेरी अब तक २१ पुस्तकें आ चुकी हैं और ५ पुस्तकों का संपादन किया है. पत्र-पत्रिकाओं की कोई गिनती नहीं है. यह मेरा सौभाग्य है कि मेरे संपादन में कई नामी-गिरामी लेखक-कवि छपे हैं. कुछ ने इसका आभार भी माना है. इसके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान में प्रधान संपादक के रूप में कार्य करते लगभग १५० ग्रंथों का संपादन किया है. साहित्य-सेवा के साथ-साथ मैंने आज़ादी की लड़ाई में भी भाग लिया. यह मेरे लिए अत्यंत संतोष की बात है. जहां तक वर्तमान लेखन की बात है कुछ-न-कुछ चलता ही रहता है. वैसे एक उपन्यास पर काम कर रहा हूं.

एल ६/९६, सेक्टर एल, अलीगंज,
लखनऊ-२२६०२४

✣ राजेंद्र वर्मा,
३/२९, विकास नगर, लखनऊ-२२६०२२
फ़ोन : ९३३५६१८२८६ (मो.)

कविवर श्री हरिनारायण व्यास, *हिंदी काव्य पुरस्कार २००७*

'समय दृष्टि'

पुणे, द्वारा प्रायोजित

पुरस्कार राशि रु. ११,०००/-

हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित कवि एवं दूसरे सप्तक के शलाका पुरुष श्री हरिनारायण व्यास के जन्मदिवस रविवार १४ अक्तूबर २००७ को प्रदेय

प्रविष्टियां प्राप्त होने की अंतिम तिथि - १ जून २००७

गत दो वर्षों - जनवरी २००५ से दिसंबर २००६ के बीच प्रकाशित लगभग १०० पृष्ठों की मौलिक काव्य पुस्तक की चार प्रतियां भेजें. साथ ही रचयिता का अद्यतन 'व्यक्ति वृत्त' (बायोडाटा) तथा चित्र भेजना भी आवश्यक है.

-: संपर्क :-

पुरस्कार संयोजन समिति, द्वारा - **मास्टर मीडिया पब्लिकेशन्स्,**
५१३-५१५, स्टर्लिंग सेंटर, पांचवी मंजिल, होटल अरोरा टॉवर्स के सामने, एम. जी. रोड, कैंप, पुणे-४११००१.
फोन : २६०५००२१, २६०५२६४६

'साहित्य अमृत' द्वारा आयोजित

युवा हिंदी कविता प्रतियोगिता

युवा कवि अपनी कविता १५ अगस्त, २००७ तक **साहित्य अमृत** कार्यालय में भेज दें.

* कविता मौलिक एवं अप्रकाशित होनी चाहिए (कृपया विचारार्थ अपनी एक ही कविता भेजें).
* कवि की आयु ३५ वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए (कृपया आयु प्रमाण-पत्र साथ भेजें).

प्रथम पुरस्कार : ५१००/- रुपए
द्वितीय पुरस्कार : ३१००/- रुपए
तृतीय पुरस्कार : २१००/- रुपए

कृपया कविता निम्नलिखित पते पर भेजें

साहित्य अमृत, ४/१९ आसफ अली रोड, नयी दिल्ली - ११०००२.
ई-मेल : prabhat1@vsnl.com ● sahityaamrit@indianabooks.com

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य

आजीवन सदस्यों के हम विशेष आभारी हैं. जिनके सहयोग ने हमें ठोस आधार दिया है. सभी आजीवन सदस्यों से निवेदन है कि वे एक या दो या अधिक लोगों को आजीवन सदस्यता स्वीकारने के लिए प्रेरित करें. संभव हो तो अपने संपर्क के माध्यम से विज्ञापन भी उपलब्ध करायें. यदि विज्ञापन दिलवा पाना संभव हो तो कृपया हमें लिखें.

१) श्री अरुण सक्सेना, नवी मुंबई
२) डॉ. आनंद अस्थाना, हरदोई
३) स्वामी विवेकानंद हाई स्कूल, कुर्ला, मुंबई
४) डॉ. डी. एन. श्रीवास्तव, नोएडा
५) डॉ. ए. वेणुगोपाल, मुंबई
६) डॉ. नागेश करंजीकर, मुंबई
७) डॉ. प्रेम प्रकाश खन्ना, मुंबई
८) श्री हरभजन सिंह दुआ, नवी मुंबई
९) डॉ. सत्यनारायण त्रिपाठी, मुंबई
१०) श्री उमेशचंद्र भारतीय, नवी मुंबई
११) श्री अमर ठकुर, मुंबई
१२) श्री बी. एम. यादव, मुंबई
१३) डॉ. राजनारायण पांडेय, मुंबई
१४) सुश्री शशि मिश्रा, मुंबई
१५) श्री भगीरथ शुक्ल, बोईसर
१६) श्री कन्हैय्या लाल सराफ, मुंबई
१७) श्री अशोक आंद्रे, दिल्ली
१८) श्री कमलेश भट्ट 'कमल', मथुरा
१९) श्री राजनारायण बोहरे, दतिया
२०) श्री कुशेश्वर, कोलकाता
२१) सुश्री कनकलता, धनबाद
२२) श्री भूपेंद्र शेठ 'नीलम', जामनगर
२३) श्री संतोष कुमार शुक्ल, शाहजहांपुर
२४) प्रो. शाहिद अब्बास अब्बासी, पांडिचेरी
२५) सुश्री रिफ़अत शाहीन, गोरखपुर
२६) श्रीमती संध्या मल्होत्रा, यू. एस. ए.
२७) डॉ. वीरेंद्र कुमार दुबे, चौरई
२८) श्री कुमार नरेंद्र, दिल्ली
२९) श्री मुकेश शर्मा, गुड़गांव
३०) डॉ. देवेंद्र कुमार गौतम, सतना
३१) श्री सत्यप्रकाश, मुंबई
३२) डॉ. नरेश चंद्र मिश्र, नवी मुंबई
३३) डॉ. लक्ष्मण सिंह बिष्ट, 'बटरोही,' नैनीताल
३४) श्री एल. एम. पंत, मुंबई
३५) श्री हरिशंकर उपाध्याय, मुंबई
३६) श्री देवेंद्र शर्मा, मुंबई
३७) श्रीमती राजेंद्र कौर, नवी मुंबई
३८) डॉ. कैलाश चंद्र भल्ला, नवी मुंबई
३९) श्री नवनीत ठक्कर, अहमदाबाद
४०) श्री दिनेश पाठक 'शशि', मथुरा
४१) श्री प्रकाश श्रीवास्तव, वाराणसी
४२) डॉ. हरिमोहन बुधौलिया, उज्जैन
४३) श्री जसवंत सिंह विरदी, जालंधर
४४) प्रधानाध्यापक, 'ब्लू बेल' स्कूल, फतेहगढ़
४५) डॉ. कमल चोपड़ा, दिल्ली
४६) श्री आर. एन. पांडे, मुंबई
४७) डॉ. सुमित्रा अग्रवाल, मुंबई
४८) श्रीमती विनीता चौहान, बुलंदशहर
४९) श्री सदाशिव 'कौतुक', इंदौर
५०) श्रीमती निर्मला डोसी, मुंबई
५१) श्रीमती नरेंद्र कौर छाबड़ा, औरंगाबाद
५२) श्री दीप प्रकाश, मुंबई
५३) श्रीमती मंजु गोयल, नवी मुंबई
५४) श्रीमती सुधा सक्सेना, नवी मुंबई
५५) श्रीमती अनीता अग्रवाल, धौलपुर
५६) श्रीमती संगीता आनंद, पटना
५७) श्री मनोहर लाल टाली, मुंबई
५८) श्री एन. एम. सिंघानिया, मुंबई
५९) श्री ओ. पी. कानूनगो, मुंबई
६०) डॉ. ज. वी. यख्मी, मुंबई
६१) डॉ. अजय शर्मा, जालंधर
६२) श्री राजेंद्र प्रसाद 'मधुबनी', मधुबनी
६३) श्री ललित मेहता 'जालौरी,' कोयंबटूर
६४) श्री अमर स्नेह, मीरा रोड, ठाणे
६५) श्रीमती मीना सतीश दुबे, इंदौर
६६) श्रीमती आभा पूर्वे, भागलपुर
६७) श्री ज्ञानोत्तम गोस्वामी, मुंबई
६८) श्रीमती राजेश्वरी विनोद, नवी मुंबई
६९) श्रीमती संतोष गुप्ता, नवी मुंबई
७०) श्री विशंभर दयाल तिवारी, मुंबई
७१) श्री अभिषेक शर्मा, नवी मुंबई
७२) श्री ए. बी. सिंह, निबोहड़ा, चितौड़गढ़
७३) श्री योगेंद्र सिंह भदौरिया, मुंबई
७४) श्री विपुल सेन 'लखनवी', मुंबई
७५) श्रीमती आशा तिवारी, मुंबई
७६) श्री गुप्त राधे प्रयागी, इलाहाबाद
७७) श्री महावीर रवांल्टा, बुलंदशहर
७८) श्री रमेश चंद्र श्रीवास्तव, इलाहाबाद
७९) डॉ. रमाकांत रस्तोगी, मुंबई
८०) श्री महीपाल भूरिया, मेघनगर, झाबुआ (म. प्र.)
८१) श्रीमती कल्पना बुद्धदेव 'व्रज', राजकोट
८२) श्रीमती लता जैन, नवी मुंबई
८३) श्रीमती श्रुति जायसवाल, मुंबई
८४) श्री लक्ष्मी सरन सक्सेना, कानपुर
८५) श्री राजपाल यादव, कोलकाता
८६) श्रीमती सुमन श्रीवास्तव, नयी दिल्ली
८७) श्री ए. असफल, भिंड (म. प्र.)
८८) डॉ. उर्मिला शिरीष, भोपाल
८९) डॉ. साधना शुक्ला, फतेहगढ़

(अगले पृष्ठ पर जारी)

'कथाबिंब' के आजीवन सदस्य...

९०) डॉ. त्रिभुवन नाथ राय, मुंबई
९१) श्री राकेश कुमार सिंह, आरा (बिहार)
९२) डॉ. रोहितश्याम चतुर्वेदी, भुज-कच्छ
९३) डॉ. उमाकांत बाजपेयी, मुंबई
९४) श्री नेपाल सिंह चौहान, नाहरपुर (हरि.)
९५) श्री रूप नारायण तिवारी 'वीरान', बिलासपुर
९६) श्री जे. पी. टंडन 'अलौकिक', फ़र्रुखाबाद
९७) श्री शिव ओम 'अंबर,' फ़र्रुखाबाद
९८) श्री आर. पी. हंस, मुंबई
९९) सुश्री अल्का अग्रवाल सिगतिया, मुंबई
१००) श्री मुन्नू लाल, बलरामपुर (उ. प्र.)
१०१) श्री देवेंद्र कुमार पाठक, कटनी
१०२) सुश्री कविता गुप्ता, मुंबई
१०३) श्री शशिभूषण बडोनी, मसूरी
१०४) डॉ. वासुदेव, रांची
१०५) डॉ. दिवाकर प्रसाद, नवी मुंबई
१०६) सुश्री आभा दवे, मुंबई
१०७) सुश्री रश्मि सक्सेना, मुंबई
१०८) श्री मुनी राज सिंह, मुंबई
१०९) श्री प्रताप सिंह सोढ़ी, इदौर
११०) श्री सुधीर कुशवाह, ग्वालियर
१११) श्री राजेंद्र कुमार सक्सेना, दिल्ली
११२) श्री एन. के. शर्मा, नवी मुंबई
११३) श्रीमती मीरा अग्रवाल, दिल्ली
११४) श्री कुलवंत सिंह, मुंबई
११५) डॉ. राजेश गुप्ता, भुसावल
११६) श्री साहिल, वेरावल (गुज.)
११७) डॉ. माधुरी छेड़ा, मुंबई
११८) सुश्री मंगला रामचंद्रन, इंदौर
११९) श्री पवन शर्मा, जुन्नारदेव, छिंदवाड़ा (म. प्र.)
१२०) डॉ. भाग्यश्री गिरी, पुणे
१२१) श्री तुहिन मिश्रा, मुंबई
१२२) सुश्री मधु प्रसाद, अहमदाबाद
१२३) श्रीमती मंजु लाल, दिल्ली
१२४) श्री सतीश गुप्ता, कानपुर
१२५) डॉ. बी. जे शेट्टी, नवी मुंबई
१२६) श्रीमती कमलेश बख्शी, मुंबई
१२७) डॉ विश्वंवर नाथ सक्सेना, मुंबई
१२८) श्री युगेश शर्मा, भोपाल
१२९) श्री सलीम अख़्तर, गोंदिया (महा.)
१३०) डॉ लक्ष्मण प्रसाद, जमशेदपुर
१३१) श्री मनोज सिन्हा, हज़ारीबाग (झारखंड)
१३२) श्री प्रशांत कुमार सिन्हा, देवघर (झारखंड)
१३३) श्रीमती मधु प्रकाश, मुंबई
१३४) श्री कृष्ण राघव, मुंबई
१३५) श्री सलाम बिन रज़ाक, मुंबई
१३६) डॉ. राजेश वर्मा, मुंबई
१३७) डॉ. मुकुल नारायण देव, मुंबई
१३८) डॉ. गजानन ल. भाले, न्यू पनवेल
१३९) श्री दयाशंकर 'सुबोध', दमोह
१४०) डॉ. रमेंद्र शंकर, मुंबई
१४१) श्री आदर्श भार्गव, मुंबई
१४२) श्री प्रताप सिंह राठौर, अहमदाबाद
१४३) सुश्री ऊषा मेहता दीपा, चंबा (हि. प्र.)

भारतीय भाषा परिषद

३६-ए, शेक्सपियर सरणी, कोलकाता - ७०० ०१७

प्रेस विज्ञप्ति

भारतीय भाषा परिषद द्वारा प्रकाशित मासिक साहित्यिक पत्रिका **"वागर्थ"** के संपादक द्वय ने सूचित किया कि युवाओं में हिंदी लेखन के प्रति रुझान बढ़े इस हेतु **"वागर्थ"** कहानी एवं कविता पुरस्कार दिये जायेंगे. लेखक की आयु सीमा ३० वर्ष निर्धारित की गयी है. रचना प्रविष्टि की अंतिम **तिथि ३० जून** है.

विस्तृत जानकारी हेतु यथाशीघ्र संपर्क करें -

फोन : ०९३३२४२८६३५

www.bharatiyabhashaparishad.com

Email : bbparishad@yahoo.co.in

डॉ. कुसुम खेमानी

'कथाबिंब वार्षिक पुरस्कार-२००६'

'कथाबिंब' के प्रकाशन का यह २८ वां वर्ष है. एक अभिनव प्रयोग के तहत प्रतिवर्ष पत्रिका में प्रकाशित कहानियों को पुरस्कृत करने का उपक्रम हमने प्रारंभ किया हुआ है. पाठकों के अभिमतों के आधार पर वर्ष २००६ के 'कथाबिंब' के अंकों में प्रकाशित कहानियों का श्रेष्ठता क्रम निम्नवत रहा. सभी पुरस्कार विजेताओं को बधाई !

: सर्वश्रेष्ठ कहानी (१००० रु.) :

● **मां, बच्चा और गिनीपिग** - *कृष्ण राघव*

: श्रेष्ठ कहानी (७५० रु. प्रत्येक) :

● **यह तो वही है !** - *डॉ. रूप सिंह चंदेल* ● रेत पर लिखा सच - *कुमार शर्मा 'अनिल'*

: उत्तम कहानी (५०० रु. प्रत्येक) :

● **जंगल** - *गोवर्धन यादव* ● **नीम पर भूत** - *पी. एन. जायसवाल*

● **उऋण** - *डॉ. श्याम सखा 'श्याम'* ● **एक ही रास्ता** - *विवेक द्विवेदी*

● **लड़कियां, मछलियां...छिपकलियां** - सैली बलजीत

*डॉ. अरविंद की कहानी **'मेरा भारत महान'** तीसरे क्रमांक पर आयी किंतु उसे पुरस्कारों में शामिल नहीं किया गया.*

फॉर्म-४

समाचार पत्र पंजीयन केंद्रीय कानून १९५६ के आठवें नियम के अंतर्गत 'कथाबिंब' त्रैमासिक पत्रिका से संबंधित स्वामित्व और अन्य बातों का आवश्यक विवरण :-

१.	प्रकाशन का स्थान	: आर्ट होम, शाताराम सालुंके मार्ग, : घोड़पदेव, मुंबई-४०० ०३३.
२.	प्रकाशन की आवर्तिता	: त्रैमासिक
३.	मुद्रक का नाम	: मंजुश्री
४.	राष्ट्रीयता	: भारतीय
५.	संपादक का नाम, राष्ट्रीयता एवं पूरा पता	: उपर्युक्त, ए-१० बसेरा, ऑफ दिन-क्वारी रोड, देवनार, मुंबई ४०० ०८८
६.	कुल पूंजी का एक प्रतिशत से अधिक शेयर वाले भागीदारों का नाम व पता	: स्वत्वाधिकारी मंजुश्री

मैं **मंजुश्री** घोषित करती हूं कि मेरी जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त सभी विवरण सत्य हैं.

(हस्ताक्षर - ***मंजुश्री***)

कथाबिंब

को

प्रकाशन के

२१ वें वर्ष

में

प्रवेश पर

अशेष

शुभकामनाएं

एक शुभेच्छु

With Best Compliments From

L. C. Vishwakarma **Mob : 9821039084**

NEW ASIAN LIFT COMPANY

INSTALLATION & MAINTENANCE OF LIFTS

Office No. 2 & 36, 1st Floor,
Seawood Corner, Plot No. 19-A,
Sector-25, Nerul (E),
Navi Mumbai - 400 706.

Tel.: 32975050 / 32403409

With Best Compliments From

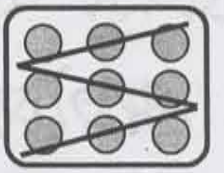

S. SEVANTILAL & CO.

Authorised Distributors / Specialist Stockists of :

TISCO, ZENITH, JINDAL, MSL, ISMT & JINDAL-SAW STEEL PIPES,
IMPORTERS OF ALLOY STEEL, LTCS & LARGE DIAMETER PIPES

246, Yusuf Meherali Road, Mumbai - 400 003. India.

Tel. : 022-3294 4496 / 97 / 6633 7178 / 79
Fax : 91-022-6633 7177
Email : ssco@hathway.com / ssco@bom8.vsnl.net.in

The trusted name ...

SHREE SAWAN BUILDERS

... For quality Construction

Project Name : **SAWAN HIGHNESS**
Location : Plot no.6 A, Sector-6, Kharghar, Navi mumbai
Stage of Construction: 3 Slab Completed.
Expected Completion : December 2008.
Types of Flats : 2 Bhk- 1180 sq.ft./ 1210 sq.ft.
2 Bhk with Terrace - 1349 sq.ft.
3 Bhk - 1598 sq.ft./ 1601 sq.ft.

Project Name : **SAWAN's PRIDE**
Location : Plot no.10/11, Sector-18, Kharghar, Navi mumbai
Stage of Construction: Recently Commenced.
Expected Completion : December 2008.
Types of Flats : 2 Bhk- 1035 sq.ft./ 1052 sq.ft.
2 Bhk with Terrace - 1129 sq.ft.
3 Bhk - 1285 sq.ft./ 1311 sq.ft.
Pent House - 1877 sq.ft.
(3Bhk with Terrace)

Project Name : **SAWAN HARMONY**
Location : Plot no.G-90-95, Sector-20, CBD, BELAPUR, Navi mumbai
Stage of Construction : Plastering.
Expected Completion : August 2007.
Types of Flats : 1 Bhk- 649 sq.ft/ 660 sq.ft.
3 Bhk - 1220 sq.ft.

Contact at. : 1-16, Mahavir Centre, Sector-17, Vashi, Navi Mumbai.
(O) 2789 1175 / Tele fax : 2789 2637 (M) 982 111 333 5 / 982 106 9262

आर. एन. आई. पंजीकरण संख्या : ३५७६४/७९

- **सुफला 15:15:15** - सुफला में पानी में (30 प्रतिशत) तथा साइट्रिक एसिड (70 प्रतिशत) में घुलनशील फास्फोरस है । पानी में घुलनशील फास्फोरस पौधों को धीरे-धीरे मिलता रहता है । इस तरह फास्फोरस तत्व स्थिर नहीं हो जाता और पौधों को वृद्धि के साथ प्राप्त होता रहता है ।
- **सुफला 20:20:0** - यह धान, दलहन, तिलहन, फूल और फल फसलें और सब्जी फसलों के लिए उपयुक्त है तथा इस में नायट्रोजन, नायट्रेट के रूप में (44 प्रतिशत) तथा अमोनिकल रूप में (56 प्रतिशत) दोनों रूप में उपलब्ध होने से यह फसलों की पूरी अवधि में उपलब्ध होता रहता है
- **उज्ज्वला यूरिया** - यूरिया का उपयोग फसलों की बुआई के समय और फव्वारे द्वारा पानी में मिलाके या फास्फोरस तथा पोटाश उर्वरक (खाद) में मिलाके कर सकते हैं ।
- **सुजला 19:19:19** - इस में नायट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश तथा सूक्ष्म तत्व जैसे Mg और S उपलब्ध है तथा सुजला 100 प्रतिशत पानी में घुलनशील है ।
- **माइक्रोला** - माईक्रोला से नायट्रोजन, फास्फोरस और पालाश पौधों को अधिक मात्रा में मिलता है । फसलों की रोग प्रतिकार क्षमता बढाता है ।
- **बायोला** - बायोला पौधों के मूलोंकी कार्यक्षमता तथा बीजोंकी अंकुरण क्षमता बढाता है ।

गेरंटीवाले खाद

कृषकों की उन्नति एवं समृद्धि के लिये सर्वदा कार्यरत ।

दे सकते है गेरंटी वही, जिनके पास हैं गुणवत्ता सही ।

राष्ट्रीय केमिकल्स एण्ड फर्टिलाइज़र्स लिमिटेड
(भारत सरकार का उपक्रम)

मंजुश्री द्वारा संपादित व **आर्ट होम**, शांताराम साळुंके मार्ग, घोड़पदेव, मुंबई - ४०० ०३३ में मुद्रित.
टाइप सेटर्स : **वन-अप प्रिंटर्स**, १२वां रास्ता, द्वारका कुंज, चेंबूर, मुंबई - ४०० ०७१. फो. : २५२१ ६२८४.